RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 02 प्रकाशन तिथि : 25 जनवरी कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 फरवरी, 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

सभी नवनिर्वाचित सरपंचों को उनकी ग्राम पंचायत का मुखिया चुने जाने पर एवं चुने गए पंचायत समिति सदस्यों को हार्दिक बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

श्री नारायण सिंह देवंदी
ग्राम पंचायत, देवंदी

श्रीमती दरिया कंवर पत्नी वीरसिंह सेला
ग्राम पंचायत, सेला

श्री नारायणसिंह इन्द्राणा
ग्राम पंचायत, इन्द्राणा

श्री हुकमसिंह कुशीप
ग्राम पंचायत, कुशीप

श्रीमती तार कंवर पत्नी बुद्धसिंह सिनेर
ग्राम पंचायत, सिनेर

श्री डूंगरसिंह रमणिया
ग्राम पंचायत, रमणिया

श्रीमती रतन कंवर पत्नी बाघसिंह, कुंडल
ग्राम पंचायत, कुंडल

श्रीमती देश कंवर पत्नी भवानीसिंह, धारणा
ग्राम पंचायत, धारणा

श्री दलपतसिंह थापन
ग्राम पंचायत, थापन

श्री फतेहसिंह डाबली
ग्राम पंचायत, मोतीसरा

श्रीमती मोहन कंवर पत्नी नेनसिंह पिपलून
ग्राम पंचायत, गोलिया

श्रीमती गणेश कंवर पत्नी जबरसिंह पादरू
ग्राम पंचायत, पादरू

श्रीमती रेण कंवर पत्नी रतनसिंह धीरा
ग्राम पंचायत, धीरा

श्रीमती जितेन्द्र कंवर पत्नी मालमसिंह मिठौड़ा
ग्राम पंचायत, मिठौड़ा

श्रीमती नरेन्द कंवर पत्नी मूलसिंह मावड़ी
ग्राम पंचायत, मावड़ी

विद्या कंवर पत्नी पृथ्वीसिंह
पंचायत समिति सदस्य
वार्ड 17

ज्योति कंवर पत्नी मानसिंह मोकलसर
पंचायत समिति सदस्य
वार्ड 12

रतनकंवर पत्नी सुमेरसिंह सिणेर
उप प्रधान पंचायत समिति सिवाना
वार्ड 1

सीमा कंवर पत्नी विशनसिंह पादरडी
पंचायत समिति सदस्य
वार्ड 22

ठा. प्रेमसिंह काठाडी
पंचायत समिति सदस्य
वार्ड 11

पृथ्वीसिंह रामदेवरिया
पंचायत समिति सदस्य
वार्ड 18

सभी नवनिर्वाचित सरपंचों को उनकी ग्राम पंचायत का मुखिया चुने जाने पर
हार्दिक बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।
शुभेच्छु :- गणपतसिंह पिपलून (समाजसेवी)

संघशक्ति

4 फरवरी, 2021

वर्ष : 57 अंक : 02

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	08
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	13
☞ त्याग से सुख की प्राप्ति	✍ स्वामी रामसुखदास जी महाराज	15
☞ त्रिविध कर्म	✍ श्री जयदयालजी गोयनका	17
☞ जीवन का तो फल मैं पा ही गया	✍ कृपाकांक्षी	21
☞ मेरा अहंकार	✍ श्री महिपालसिंह चूली	22
☞ महान् क्रान्तिकारी-राव गोपालसिंह-खरवा	✍ डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा	23
☞ क्राँति	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	25
☞ नर से नारायण की कृपा बड़ी	✍ संकलित	27
☞ व्यक्तित्व निर्माण हेतु इन्द्रियों के भोगों से बचें	✍ श्री भँवरसिंह रेड़ी	29
☞ हमारा स्वरूप	✍ रश्मि रामदेरिया	30
☞ चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	✍ श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

संघ स्थापना दिवस :

22 दिसम्बर सन् 1946 को श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना हुई थी। उस दिन प्रारम्भ हुई संघ यात्रा आज तक निरंतर गतिशील है। इस आज तक की लम्बी यात्रा में अनेक बार बाह्य व आंतरिक बाधाएँ संघ ने सहन की हैं। बाधाएँ आती हैं, विघ्न डालती हैं पर अन्त में बाधाएँ ही हारती हैं। संघ गतिमान रहता है और बाधाओं के समय बनी मंद गति पुन: तीव्र बनती आ रही है। हर बाधा हमारी कसौटी के रूप में भी हमारा मूल्यांकन करती है और कुछ बहुमूल्य सीख भी देकर जाती है। संघ पूरी मानव जाति के हित में कर्मशील रहने वालों का निर्माण करने वाली कार्यशाला है और आज का संसार का वातावरण ऐसे कार्यों के विपरीत प्रवाह में बह रहा है। इसलिए बाह्य और आंतरिक बाधाएँ आती ही रहेंगी यह स्पष्ट है। इसलिए पूरे सावचेत होकर कर्मशील बने रहना होगा।

22 दिसम्बर, 1996 में संघ ने अपनी यात्रा के 50 वर्ष पूरे किए थे। इसलिए 1996 के पूरे वर्ष विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से संघ की इस स्वर्ण जयंती की तैयारी में संलग्न रहे। जगह-जगह सम्पर्क यात्राएँ की, पदयात्राएँ की, समारोहों का आयोजन किया और पूरी तैयारी के साथ स्वर्ण जयन्ती मनाई गई। संघ परिचय नये-नये क्षेत्रों में भी प्रसारित हुआ। स्वयंसेवकों में भी उत्साह की लहर प्रसारित हुई।

22 दिसम्बर, 2020 को संघ ने अपनी यात्रा के 74 वर्ष पूरे कर 75वें वर्ष में अर्थात् हीरक जयन्ती वर्ष में प्रवेश किया है। कुछ वर्षों से शिविरों में तथा अन्यत्र भी हीरक जयन्ती की चर्चा स्वयंसेवकों में परस्पर आती रही है। स्वयंसेवकों की चाह प्रकट होती थी कि पूरी तैयारी के साथ हीरक जयन्ती भी मनाई जाए। अधिकतर स्वयंसेवक सोच रहे थे कि मई 2020 में होने वाले उच्च प्रशिक्षण शिविर में इस सम्बन्ध में कुछ मार्ग दर्शन मिलेगा। लेकिन कोविड-19 महामारी की इस बाह्य बाधा ने परिस्थितियाँ ही बदल दी। मई में और उसके बाद अब तक कोई शिविर किए जाने के हालात अभी तक देश में नहीं बने।

यह नई बाधा आई है, जो आई है वह कभी जाएगी भी, पर हमारी यात्रा नहीं रुकेगी। विपरीत परिस्थितियों में संघ कार्य कैसे चलता रहे, इसकी खोज होनी ही थी और वर्चुअल कार्यक्रम प्रारम्भ हुए। प्रारम्भ में केन्द्रीय स्तर पर कार्य प्रारम्भ हुआ और फिर अनेक स्थानों पर वर्चुअल शाखाएँ प्रारम्भ हो गई। इन माध्यमों से परस्पर सम्पर्क भी बना रहा और साहित्य पर गहन चर्चा भी प्रारम्भ हुई। राजकीय दिशा-निर्देशों की पालना के साथ कुछ जगह शाखाएँ भी प्रारम्भ हो गई।

स्थापना दिवस पर भी अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए। प्रात: 7.30 बजे माननीय संघप्रमुख श्री का उद्बोधन हुआ जिसे देश भर में अनेक स्थानों पर स्वयंसेवकों ने बड़े ध्यान से सुना। उद्बोधन के पूर्व संघप्रमुखश्री द्वारा दिए गये नववर्ष संदेश को सुनाया गया। उस दिन अनेक स्थानों पर वर्चुअल शाखाओं में और मैदानी शाखाओं में इस संदेश व उद्बोधन पर चर्चा भी हुई। गुजरात, मध्य गुजरात, सूरत आदि क्षेत्रों में सामुहिक शाखाओं में तथा शाखा स्तर पर भी अनेक जगह स्थापना दिवस समारोह पूर्वक मनाया गया। मुम्बई की शाखाओं का वर्चुअल कार्यक्रम रहा। बाड़मेर जिले में अनेक स्थानों पर कार्यक्रम सम्पन्न हुए। खबड़ाला कार्यक्रम तो स्वयं संघप्रमुखश्री के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। जैसलमेर जिले की अनेक शाखाओं में कार्यक्रम रहे तो पू. तनसिंहजी के ननिहाल और जन्म स्थल बेरसियाला में भी कार्यक्रम हुआ। नागौर जिले, जालोर जिले, जोधपुर जिले की अनेक शाखाओं में कार्यक्रम सम्पन्न हुए। पूर्व संध्या पर भजनों के कार्यक्रम होने के भी समाचार हैं। यह स्थापना दिवस तो मनाया ही गया, हीरक जयन्ती वर्ष में संघ परिचय को भी बढाना है, जयन्ती भी मनानी है। इसी संदर्भ में 8 से 10 जनवरी तक संघप्रमुखश्री के सान्निध्य में कार्यकारियों, संभाग प्रमुखों आदि की चर्चा बाड़मेर में हुई।

चलता रहे मेरा संघ

{22 दिसम्बर, 2020 को क्षत्रिय युवक संघ ने 74 वर्ष पूर्ण कर 75वें वर्ष, हीरक जयन्ती वर्ष में प्रवेश किया है। इस अवसर पर माननीय संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा उद्बोधित संदेश।}

आज 22 दिसम्बर, सन् 2020 का दिन है। आज के बाद दिन बड़े और रातें छोटी होने लग जायेगी। ये प्रतीक इस बात का है कि विकास प्रारम्भ हो गया है। उत्तरोत्तर अब यह काम रुकने वाला नहीं है। कौनसा काम? जो 22 दिसम्बर, सन् 1946 के दिन एक क्षत्रिय युवक संघ नाम की संस्था का उद्भव हुआ। एक 22 वर्षीय नवयुवक ने विद्या अध्ययन करते हुए इसकी कल्पना की। उसके बारे में अध्ययन किया, लोगों से संपर्क किया और संघ की स्थापना की। इसकी आवश्यकता क्या पड़ी? समाज में संगठन इससे पहले और भी बहुत थे, जिनका बड़ा-बड़ा नाम था। बड़े-बड़े अधिवेशन करना, बड़े-बड़े प्रस्ताव पास करना.... उसकी क्रियान्विति भी होती थी... लेकिन वह सब क्षत्रिय समाज में प्राण नहीं फूँक सका।

जब क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना हुई उस समय भारतवर्ष में अंग्रेजी शासन था। 1857 से लेकर 1947 तक उस विदेशी शासन को उखाड़ फैंकने के लिए बलिदानी क्रांतियाँ हुई। लोगों को गोलियाँ खानी पड़ी, लोगों को जेल जाना पड़ा। काले पानी तक जाना पड़ा, आजीवन जेल में रहना पड़ा। उसके बाद यह आजादी मिली। देश टुकड़ों में बंटा हुआ था। 500 से ऊपर देशी रियासतें थी। देश में आजादी बाद उनका एकीकरण होना आवश्यक था। उस समय के महान नेताओं ने वह भी किया और जो समाज में टूटन आई हुई थी, परिवार टूट रहे थे, संस्कार रहित समाज बन रहा था, परिवार बन रहा था, उस सबको संस्कारित करना परम आवश्यक था। राज बदलते रहते हैं, सत्ताएँ बदलती रहती हैं, कुर्सियों पर बैठने वाले लोग बदल जाते हैं उससे कोई नई क्रांति घटित नहीं होती। थोड़े समय तक अच्छा शासन भी रहा।

पूज्य तनसिंहजी ने आजादी से एक वर्ष पूर्व इस बात को अनुभव किया......कि लोगों को जब तक संस्कारित नहीं बनाया जाएगा....तब तक ये औपचारिक क्रांतियाँ देश में बदलाव नहीं ला सकती। उस समय समाज के बारे में अध्ययन किया, इतिहास का अध्ययन किया, सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन किया और उसके बाद एक मार्ग निकाला कि जिससे संसार को एक स्थायी व्यवस्था दे सकें। तो 'सहयोगी व सामूहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली' के द्वारा पूज्य तनसिंहजी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ की कार्यप्रणाली को अंजाम देकर संघ की स्थापना की। छोटे-छोटे बच्चे संघ में आने लगे, संघ की शाखाओं का विस्तार होने लगा, शिविर लगने लगे। विकट परिस्थितियों में उस समय का समाज भी...क्षत्रिय समाज भी भ्रमित था, मुगालते में रहने वाला था जो क्षत्रिय युवक संघ को समझ नहीं सका। आज भी इसी प्रकार की भ्रांतियाँ क्षत्रिय युवक संघ के बारे में बनी हुई हैं। कारण क्या है? कि लोग समझ नहीं पाए कि क्षत्रिय युवक संघ का उद्देश्य क्या है, क्षत्रिय युवक संघ की कार्यप्रणाली क्या है, क्षत्रिय युवक संघ क्या व्यवस्था देना चाहता है? क्या केवल क्षत्रियों का संगठन बनाना चाहता है अथवा पूरे संसार को संस्कारित करके सुख, समृद्धि और शान्ति प्रदान करना चाहता है? इस बात को तो लोग आज तक भी नहीं समझ पाए हैं। और विस्मय की बात यह है कि जो क्षत्रिय युवक संघ में लम्बे समय तक आते रहे हैं उनमें से भी कुछ ने क्षत्रिय युवक संघ को ढंग से समझा नहीं और जो समझा नहीं वो दूसरों को समझाए कैसे?

क्षत्रिय युवक संघ का कार्य लोक संग्रह का है, लोक शिक्षण का है। लोगों को इकट्ठा करना केवल मात्र उद्देश्य नहीं है, उनको शिक्षा प्रदान करना क्षत्रिय युवक संघ का उद्देश्य है। प्रश्न उठता है कि क्षत्रियों को ही क्यों शिक्षा दी जाए? क्योंकि....क्षत्रिय कौम क्या है, क्षत्रिय क्या है, ये समझना भी बहुत मुश्किल है। शास्त्रीय व्याख्याओं से इसको व्याख्यायित किया जा सकता है...

परन्तु वास्तव में क्षत्रिय कौन है? 'क्षतात किल त्रायते इति क्षत्रिय'! जो क्षय से बचाने वाला है, वो क्षत्रिय है। किस प्रकार का क्षय? जो संस्कारों का क्षय हुआ है, मानवीय मूल्यों के प्रति जो मान्यताएँ हैं उनका क्षय हुआ है, धर्म का क्षय हुआ है। इन सब चीजों को वापिस दिशा देना, यह क्षत्रिय युवक संघ का काम है। और इसलिए उसके जो शिविर लगते हैं उसमें भली प्रकार से यह समझाया जाता है कि क्षत्रिय युवक संघ का उद्देश्य क्या है, इसके साथ यह भी बताया जाता है कि मानवीय जीवन का लक्ष्य क्या है।

मानवीय जीवन का लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करने के अतिरिक्त कुछ हो नहीं सकता क्योंकि इतनी समझ और बूझ केवल मनुष्य को ही दी है, दूसरे प्राणी तो भोग भोगने के लिये इस संसार में आते हैं लेकिन मनुष्य है, उसमें बुद्धि है। वो चाहे तो अपना उत्थान कर सकता है चाहे तो अपने आपको गर्त में मिला सकता है, ये उसकी स्वतंत्रता पर निर्भर करता है। और इसीलिए बड़ी-बड़ी संस्थाएँ होने के बाद में भी, जान जाने के बाद में भी, इतिहास भी इस बात का साक्षी है, कि पहुँचे हुए सिद्ध महापुरुष भी गर्त में गिर गए। ऐसे पतन को कैसे रोका जाए तो तनसिंहजी ने यही कहा-''निज को न बनाया तो जग रंच नहीं बनता'। जो अपने आपको है जैसा ही छोड़कर, संसार का सुधार करना चाहता है, खुद संगठन से न जुड़कर संसार को संगठित करना चाहता है वो केवल सपने देखता है। तनसिंहजी ने सपना देखा एक... कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए क्या मार्ग हो सकता है.. तो उन्होंने सबको बताया कि अंत:करण की शुद्धि के बिना ईश्वर को प्राप्त करना अति दुर्लभ है। तो क्या किया जाए? अंत:करण शुद्ध कैसे होगा? -सद्कर्म से। तो प्रश्न उठता है सद्कर्म क्या है? जो भी काम करने वाला व्यक्ति है वो सब अपने कामों को सद्कर्म ही मानता है। लेकिन तनसिंहजी ने बताया-सद्कर्म स्वधर्म-पालन है, अपने कर्त्तव्य का पालन है, जिसके लिए भगवान ने हमको इस संसार में भेजा है उस काम को पूरा करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। और इसीलिए ईश्वर की ओर जाने के लिए अपने-अपने स्वधर्म का पालन करना-यह मार्ग बताया पूज्य तनसिंहजी ने। क्षत्रिय एक बलिदानी परम्परा का समाज है। त्यागमय जीवन जीने वालों को क्षत्रिय कहा जाता है। आज तक इतिहास में क्षत्रिय के त्याग को कोई चैलेंज नहीं कर सका। पशु-पक्षियों के लिए अपने प्राण देने वाले, सिर कटने के बाद में भी लड़ने वाले, अपनी आन-बान-शान की रक्षा करने के लिए जौहर और शाके करने वाले अन्य कोई हुए नहीं हैं संसार में। आज भी वह आश्चर्य का विषय बना हुआ है इसलिए उसी मार्ग को खोजा.... जो उस मार्ग पर चलकर सुशासन संसार को देते थे.....उन लोगों को ढूंढा जाये।

बीज समाप्त नहीं हुआ है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है-बीज का नाश नहीं होता है। वो लोप हो गया सा दिखाई पड़ता है लेकिन उसको थोड़ा सा... संस्कार देने के लिए, जो सुप्तावस्था में पड़ा है.... उसको जागृत करने की आवश्यकता है। क्षत्रिय युवक संघ ऐसे गुमराह हठीलों को रास्ते पर लाने का प्रयत्न करता है। एक घण्टा रोज युवकों को बुलाकर रोजाना शिक्षण देना, रोजाना अभ्यास कराना, यह क्षत्रिय युवक संघ की कार्य प्रणाली है। हमारे जहन में जो कुसंस्कार पड़े हुए हैं उनको हटाना और उनकी जगह पर सुसंस्कारवान बनाना। जो युवक आते हैं उनको... इनका लगातार अभ्यास कराते हैं। और इसके बाद शिविर लगते हैं, ट्रेनिंग कैम्प लगते हैं। प्रारम्भ में जो तनसिंहजी ने पहला ही शिविर लगाया था तो मैंने सुना है कि कुल उन्नीस लोग आए थे और आज 400.. 500.. 700.... 1000 लोगों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है। पहले केवल तनसिंहजी प्रशिक्षण देते थे, अब तनसिंहजी से प्रशिक्षण पाकर के लोग लोक में शिक्षण देने लगे हैं और खूब विस्तार हुआ है। पूरे भारतवर्ष में इसकी शाखाएँ लगती हैं और पूरे भारतवर्ष में आज के दिन यह कार्यक्रम, यह समारोह मनाया जा रहा है, कुछ विदेशों में भी मनाया जा रहा है।

लेकिन केवल युवकों से ही समाधान हो नहीं रहा

था, तो फिर बालिकाओं का, महिलाओं का, दंपत्तियों का, इनका प्रशिक्षण शुरू हुआ, उनकी शाखाएँ शुरू हुई। उनके चार दिन के, सात दिन के, ग्यारह दिन के शिविर शुरू हुए। और जो लोग, जो स्त्रियाँ इन शिविरों में... जो बालिकाएँ इन शिविरों में आई, उनका अनुभव है कि हमने ऐसी बातें न तो विद्यालयों में सुनी, न हमारे अध्यापक लोग बताते हैं, न घरों में हमारे इस प्रकार के कोई संस्कार और चर्चाएँ होती हैं। ये केवल श्री क्षत्रिय युवक संघ में होती हैं और वो बार-बार शिविरों में आकर के खुद प्रशिक्षण देने योग्य, वो बालिकाएँ और स्त्रियाँ बन जाती हैं।

फिर अनेक प्रकार के कार्यक्रमों में पूरे समाज को साथ लेने के लिए अनेक प्रकल्प शुरू किए गए हैं। उनमें जिन-जिन की जीवन में आवश्यकता पड़ती है.... पैसे की आवश्यकता पड़ती है तो एक व्यापारियों का संगठन भी बनाया जाना चाहिए इस पर विचार हुआ और अब भी चल रहा है। राजनैतिक संगठन का मतलब केवल राजनैतिक पार्टियाँ नहीं... राजनैतिक पार्टियों का स्तर तो क्षत्रिय युवक संघ के योग्य ही नहीं है... कोई भी नेता क्षत्रिय युवक संघ के योग्य नहीं है.... वहाँ स्वार्थ के सिवाय कुछ है नहीं... बस पाना ही पाना है, देना कुछ नहीं है.... और क्षत्रिय युवक संघ में देना ही देना है, लेना कुछ नहीं है। तनसिंहजी का सिद्धान्त था-समाज से कम से कम लो और अधिक से अधिक दो... इसको पागलपन समझते हैं... वो लोग। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि वो इसके योग्य नहीं हो सकते.... लेकिन समाज में ढूंढ़ने पर इस प्रकार के बहुत सारे लोग मिलते जा रहे हैं, समूह बढ़ता जा रहा है, दल के दल बादल की तरह घिरते हुए आये जा रहे हैं, क्षत्रिय युवक संघ में समाहित हो रहे हैं.. और ये कोई... अलग से कोई पंथ नहीं बन रहा है। हमारे पूर्वजों द्वारा, हमारे मुनियों द्वारा, हमारे ऋषियों द्वारा जो मार्ग दिखाया गया, उसी मार्ग पर चलते हुए ये बदलाव की कल्पना पूज्य तनसिंहजी ने की थी वो आज फलीभूत हो रही है।

संघ का 75वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ है। 2021 में 75 वर्ष पूरे हो जाएँगे और क्षत्रिय युवक संघ की हीरक जयन्ती 22 दिसम्बर, 2021 को मनाई जाएगी। तो 2020 से लेकर... 2020-2021.. ये हीरक जयन्ती वर्ष है क्षत्रिय युवक संघ के लिए। जन-जन तक क्षत्रिय युवक संघ पहुँचे.... आप सब लोग जो इस बात को सुन रहे हैं... क्षत्रिय युवक संघ आप का हितैषी है, आप क्षत्रिय युवक संघ के हितैषी हैं... जितना भी आप जानते हैं, दूसरे लोगों को भी बताइये... उसका प्रसार कीजिए। संघ का साहित्य... जो साहित्य प्रकाशन करती है.... वो संस्था इसका प्रकाशन कर रही है.... लेकिन बहुत अधिक साहित्य का प्रसार... प्रसारण करना है इसलिए उसका प्रकाशन भी खूब करना पड़ेगा, उसके पैसे की भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। हम ये कार्यक्रम कहाँ मनाएँगे? एक ही कार्यक्रम होगा या पूरे भारतवर्ष में... कहाँ कहाँ होगा, ये केन्द्रीय कार्यालय हम सबको सूचित करेगा.. और हमको इस एक साल में क्या करना है... ये बातें भी समय-समय पर बताई जाती रहेगी। श्री क्षत्रिय युवक संघ घर-घर तक पहुँचे, इसमें जात-पाँत का भी भेद ना रखें।

हमारे पास जो साहित्य है, उसको यदि हम देखेंगे, पढ़ेंगे तो हमको मालूम होगा कि यह तो ऐसी रामबाण औषधि है... जीवन में सुख-समृद्धि और सुख-शान्ति लाने के लिए, यदि हम यह अनुभव करते हैं तो यह संसार को दिया जाना चाहिए। हममें से सभी जो अपने आपको क्षत्रिय युवक संघ के स्वयंसेवक समझते हैं या जिम्मेदार लोग हैं या सहायक हैं या समर्थक हैं उन सबको क्षत्रिय युवक संघ के इस यज्ञ में आहुति डालनी चाहिए। मैं भारतवर्ष के ही नहीं, भारत से बाहर भी... यदि कोई हमारे हितैषी रहते हैं, उन सबका आह्वान करता हूँ कि इस हीरक जयन्ती को महत्त्व दें। तो आपको, धीरे-धीरे इस साहित्य को आप पढ़ेंगे पता चलेगा कि ये केवल क्षत्रियों के लिये नहीं है संगठन, ये आवश्यकता क्षत्रियों की ही नहीं..... पूरे संसार की है, पूरी मानवीयता की है।

क्षत्रियों का जीवन सदैव दूसरों के लिए बताया गया

(शेष पृष्ठ 20 पर)

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–65

प्रकृति का सुरम्य प्रांगण–सौंदर्य, सुषमा और जीवन–सौख्य का क्रीड़ा स्थल है यह। निर्झरणी के कण्ठ से गायन करती हुई, त्रिगुणात्मक मलयानिल को उच्छवासों में छोड़ती हुई, पुष्पों के हास और किसलय की कोमलता मुंह पर धारण किए हुए वृक्षों की शीतलता को आँचल में समेटे, भ्रमर–राशि को अलकों में और जीवन के समस्त विहाग को पलकों में भरे वह प्रकृति देवी मुझे आमन्त्रित कर रही है थोड़ी विश्रान्ति के लिए। पर रुकूंगा नहीं, साधक जो ठहरा।

प्रलोभन अनेक प्रकृति परोसती है,
साधक है नेक रास्ते में विराम कैसा?

प्रकृति की रमणीयता का वर्णन करता अवतरण सुन्दर है। ऐसा मजेदार है कि यह पढते ही मन प्रफुल्लित होता हो तो ऐसे स्थान में आराम करना किसे नहीं अच्छा लगता। अर्थात् सभी को अच्छा लगता है। प्रकृति ऐसे रमणीय, आनन्ददेय स्थल से साधक को आमंत्रित करती है। हठव्रती साधक कहता है–मैं रुकूंगा नहीं, साधक हूँ न!

साधक की यह बात समझने के लिए एक दृष्टांत उपयोगी हो सके, इसलिए लेता हूँ। एक संदेशवाहक एक गाँव से ज्यादा दूरी के गाँव पर संदेशा पहुँचाने निकलता है। दोपहर के समय एक सुन्दर खेत बाड़ी के पास से गुजरता है। प्यास लगी है। पानी पीने के लिए बाड़ी (फार्म हाऊस) में प्रवेश करता है। खेत में पानी पहुँचाने वाली नाली बह रही है। पेट भरकर पानी पीता है, छटादार वृक्षों की छाया, पौधों पर महकते सुन्दर पुष्प, किसी को भी रुकने को मजबूर करते हैं। ऊपर से बाड़ी का मालिक संदेशवाहक को कहता है,– गर्मी है, थोड़े समय इस खटिया पर आराम करने के बाद चले जाना। संदेशवाहक सोचता है–कैसा सुन्दर मनमोहक वातावरण है, थोड़ी देर आराम कर लूँ तो! उस समय उसकी जिम्मेदारी उसे सचेत करती है और वह आराम के लोभ को छोड़कर अपना रास्ता पकड़ता है। एक संदेशवाहक अपनी जिम्मेदारी समझकर लुभावने वातावरण में आराम करने रुकता नहीं है। जबकि यहाँ तो एक भव्य अद्भुत विचारधारा से बंधा साधक है। क्या रमणीयता, सुन्दरता, सौम्यता और आकर्षक प्रकृति उसे आराम करने का आमंत्रण देकर विचलित कर सकती है? अगर रुक जाए तो साधक कैसा?

साधक सावचेत न हो, जाग्रत न हो तो प्रकृति की सुन्दरता, रम्यता और भव्यता साधना में बाधा और विघ्न रूप बनने की पूर्ण संभावना रहती है। कितने ही साधक, साधु, महंतों, सम्प्रदाय के मुखिया सांसारिक प्रकृति के प्रलोभनों में फंसकर अपना ध्येय, मार्ग छोड़कर, कर्तव्य को भूलकर सांसारिक प्रकृति की लुभावनी, लालचभरी, रमणीयता के मोहक वातावरण में डूब जाते हुए हम देखते हैं। वर्तमान समय में बड़ी मात्रा में संन्यासियों के आश्रम देखें तो उनमें प्रकृति की लालायित रमणीयता का परिचय मिलता है। 'साधु तो चलता भला', उसके बदले में भव्य आश्रम बनाकर उसमें आराम करता है। जिस राष्ट्र में साधक, साधु, प्रकृति का गुलाम बनता है उस राष्ट्र में अनिष्ट अपना सिर उठाता है। राष्ट्र में अराजकता और अव्यवस्था का साम्राज्य बन जाता है। आज हम थोड़ी–सी गंभीरता से सोचते हैं, बारीकता से अवलोकन करते हैं तो राष्ट्र का भविष्य हमें धुंधला सा, दया के पात्र सा अवश्य लगता है।

साधक, साधु, वह तो राष्ट्र के और समाज के सूत्रधार माने जाते हैं, जब प्रकृति के रमणीय वातावरण से आकर्षित होकर वह आराम करने के लालच में फंसता है तब राष्ट्र और समाज की विपत्तियाँ, संकट एवं बाधाएँ सीमा लांघ देती हैं। जन समूह उसी में फंस जाता है। क्या

करें? आई हुई उलझनों में से कैसे बाहर निकलें, इस असमंजस में व्याकुल बन आँसू बहाता है। मेरी साधना का साधक सचेत है। जाग्रत है, इसीलिए वह प्रकृति की रम्यता में फंसकर आराम करने रुके तो कैसी परिस्थिति का सृजन होगा, यह बात वह बराबर जानता है। इसीलिए प्रकृति के आराम करने के आमंत्रण को इन्कार करता हुआ कहता है-'मैं रुकूंगा नहीं, साधक जो हूँ?'

इस राष्ट्र के सभी साधक, साधु 'मेरी साधना' के साधक का अनुसरण करें तो आपत्तियों से घिरी इस धरती पर स्वर्ग उतर आयेगा। 'स्वर्ग से भी मेरी मातृभूमि महान है' यह सूत्र साकार बने, सिद्ध मंत्र बने। इस साधना मार्ग के संस्थापक एक सहगायन की पंक्ति में कहते हैं- 'जिन्हें है मोह महलों से वनों की खाक क्यों छानें।'

समग्र विश्व, समग्र राष्ट्र, समग्र मानव जाति आज महलों के मोह में पागल बने हैं। तब मेरी साधना का साधक उन्हें सचेत करने हेतु प्रकृति के लुभावने आमंत्रण को ठोकर मारकर राह दिखा रहा है।

बन्धुओं! साधक स्वयं के जीवन द्वारा हमको सुख, सुविधा, आराम सब छोड़कर राष्ट्र के लिए, मानव जाति के लिये, कौम के लिये, उग्र रूप में तपने की अमूल्य सलाह देता है। हमारे लिए यह चुनौती है। चुनौति को स्वीकार करना क्षत्रिय का स्वभाव है। इस चुनौती को आत्मसात करने हेतु परमात्मा हमें शक्ति प्रदान करें, ऐसी प्रार्थना है।

अर्क- विलासिता विनाश को न्योता देती है।

चिंतन मोती- मनुष्य वाणी शूरा बनने के बजाए कर्मशूरा बने। हम बोलने की बजाए कर्म करके दिखाएँ। सच्चे कर्मयोगी बनें। व्यर्थ वाणी से अच्छा है, मौन रहकर कर्म करना। क्रियात्मक जीवन ही श्रेष्ठ जीवन है। बड़ी-बड़ी डींग हांकने से अच्छा है थोड़ा कर्म करके बताना।

अवतरण-66

सामने देखा-एक सर्व-सुख-रूपा, सर्व साधन सम्पन्न, परम आकर्षक जग-मोहिनी देवी प्रस्तुत थी। पूछ बैठा,-''देवी! तुम कौन और यहाँ किस प्रयोजन से आई हो...?'' ''मैं इस युग की सर्वप्रिया और सर्वोपास्या देवी लक्ष्मी हूँ, यदि मुझे चाहते हो तो साधना छोड़नी होगी''। मैंने कहा-''मैं प्रस्तुत हूँ देवी! अभी छोड़ता हूँ इस साधना को, आओ शीघ्र....''

''साधक यह तुम्हारी विकट परीक्षा का समय है, चाहो तो अपनी साधना द्वारा अनुभूत ज्ञान की सच्चाई और चरित्र की सबलता से विपक्षी द्वारा छोड़ी गई इस अमोघ शक्ति के प्रहार को निष्फल कर सकते हो।'' मैं सम्हल गया इस आत्म-ध्वनि को सुनकर।

सर्वप्रिया देवी लक्ष्मी के वचन से लुभा गया।
पल में गया भीग, अंतर की आवाज से जग गया।।

साधक मानसिक भौगोलिक और प्राकृतिक विघ्नों, अड़चनों, तकलीफों, अवरोधों का सामना करता हुआ अपने ध्येय मार्ग पर आगे बढता है। इन सभी आफतों, अड़चनों को पार करके आगे बढने पर विश्वमोहिनी महामाया देवी लक्ष्मी का प्रलोभन सामने आता है। साधक पूछता है-तुम कौन हो? उत्तर मिलता है-सुन! मैं इस युग की सर्वप्रिया और सर्वोपास्या देवी लक्ष्मी हूँ। जो मेरे उपभोग की इच्छा हो तो तुझे तेरी साधना छोड़नी होगी।

साधक लुभा जाता है। कौन नहीं लुभाता? बड़े-बड़े त्यागी, तपस्वी और साधु-पुरुष भी सर्वप्रिया और सर्वोपास्या देवी लक्ष्मी के मोह में अपने ध्येय मार्ग को भूल जाते हैं। लक्ष्मी से प्राप्त भोग-विलास, वैभव के चक्कर में फंस जाते हैं। साधक भी अपना ध्येर्य मार्ग छोड़कर देवी लक्ष्मी के उपभोग के लिए लालायित होता है। अधीर बनता है और कहता है-देवी लक्ष्मी आओ। लक्ष्मी के मोह में हम सभी उसके पीछे पागल (दिवाना) बन अँधी दौड़ की स्पर्धा में भूले और भटके हुए हैं।

पैसे ही पैसे के नाम की माला का जाप जपते हुए नीति-अनीति, पाप-पुण्य की किसी भी प्रकार की चिन्ता या विचार किए बिना किसी भी ऐसी हानि के बदले धन प्राप्ति के पीछे पड़े हैं। उसके पीछे पागल और अंधे बन गए हैं। लक्ष्मी के मोह में भान भूलकर हम कुटुम्बधर्म,

समाजधर्म, राष्ट्रधर्म जैसे महान मार्ग भूल गए हैं। ऐसे लुभावने, लालची प्रलोभन के सामने झुक जाने की तैयारी करता है। ऐसी विकट परिस्थिति में साधक की अन्तरात्मा उसे चेतावनी देकर सजग बनाती है। अन्तर्ध्वनि सुनते ही साधक सचेत हो जाता है।

साधक को सचेत करते हुए अन्तर्ध्वनि कहती है- साधक! यह तेरी कसौटी की घड़ी है। तू तेरे ज्ञान की सच्चाई, चरित्र की सबलता से विपक्षियों द्वारा रचे हुए जाल को काट सकता है।

साधक सचेत हो जाता है। लक्ष्मी के मोह में भटक जाने की बजाए ध्येय के मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

साधक को तो उसकी अन्तर्ध्वनि सचेत करती है। साधक सचेत हो जाता है। हमको सोचना यह है कि हमको भी क्या हमारी अन्तर्ध्वनि सचेत करती है? हम इस चेतावनी को सुन पाते हैं? सच बात करें तो हमको बहुत अखरती है। आज का मनुष्य, आज का समाज अपनी आत्मा को मारकर जीता है। किसी विचारक ने कहा है- 'आज का समाज जिन्दा मुर्दों का समाज है।' मनुष्य अपनी आत्मशक्ति, आत्मध्वनि गंवाकर देह का पुजारी बना है। देह का भक्त बन बैठा है।

स्व. पू. तनसिंहजी ने आज की हमारी आवश्यकता को सहगायन की एक पंक्ति में बताया है- 'आत्मबल की खोई शक्ति जुटानी।'

श्री क्षत्रिय युवक संघ क्षत्रियों की मनोदशा और आत्मदुर्बलता दूर करके आत्मबल, आत्मज्योत जगाने का काम करता है। यह बात गंभीर है। इसीलिए हमें जल्दी समझ में नहीं आती जिससे अपना आत्मबल, अपनी आत्मशक्ति क्षीण हो गई है। मनुष्य अपनी सभी कमियाँ, कमजोरियाँ, त्रुटियाँ आत्मबल, आत्मशक्ति द्वारा दूर कर सकता है। श्री रघुवीर अपनी एक कथा में कहता है-आज का मानव समाज जीवित मुर्दों का समाज है। मुर्दों में आत्मा ही नहीं होती तो फिर आत्मबल या आत्मशक्ति की तो बात ही कहाँ रही।

अन्य समाज की बात छोड़ दें। हम अपनी यानी क्षत्रिय समाज की बात करें तो जो क्षत्रिय समाज आत्मवान, चेतनासभर बन जाए तो समाज में से ही नहीं, देश में से ही नहीं सारे विश्व में सभी अनिष्टों को जड़ से उखाड़ फेंक दे। लेकिन कौन से क्षत्रिय? साधु, संतों, महंतों और अच्छे कार्यों में प्रवृत होने वाले सभी क्षत्रिय जगें। जगत को बचावें और सद् प्रेरणा का संचार करें, ऐसी अपेक्षा रखते हैं। ऐसी मान्यता है। हम ऐसे न हैं तो भी जगे तभी सवेरा, यह सिद्धान्त स्वीकार करना होगा।

परमेश्वर साधु, संतों, महंतों की अपने ओर की दृष्टि को सार्थक बनाने की शक्ति दें, ऐसी हम सब प्रार्थना करें।

अवतरण-67

विशाल चित्र-शाला है। पायल-वादन की सुमधुर ध्वनि जीवन की मस्ती बिखेर रही है, गवाक्षों में से ज्योत्सना हंसकर देख रही है, दीपावली मन्द प्रकाश विकीर्ण कर रही है, एकान्त कोने में सुराही के कक्ष में ही सुवासित सुरा-चषक रखा हुआ है। यौवन की अठखेलियों से पीड़ित, षटरस व्यंजनों का थाल सजाए सुबाला खड़ी है,-मुँह पर धैर्यहीन प्रतीक्षा और हृदय में गुदगुदी पूर्ण उत्कण्ठा लिए। साधक तो अन्धा होता है, देखता ही नहीं इतर दृश्यों को।

सुरा, सुन्दरी व संगीत, भुलावे भान।
निर्बल मन के नर का छुड़ा दे मान।।

इस अवतरण को शुरू करने से पहले पाठकों को फिर एक बार इस पुस्तिका 'मेरी साधना' का अल्पता में याद दिला दूँ। 'मेरी साधना' कर्तव्यच्युत क्षत्रिय जाति को सन्मार्ग पर चलाने के लिए समझ देती पुस्तिका है। इसीलिए यह साधना हिमालय, गिरनार, गुफा या आश्रम में आसन लगाकर की जाने वाली साधना से अलग है। जनसमूह में रहकर जाति को जाग्रत और सबल बनाने की साधना है। पूर्ण मनोयोग से, समर्पण भाव से जो कार्य करता है, वह साधक है। इसीलिए यह एक समाज कथा-व्यथा वर्णित सामाजिक कथा वार्ता है। इसके अवतरणों की चर्चा, अर्थघटन सामाजिक दृष्टिकोण से ही होता है।

समर्पित भाव से निष्ठा पूर्वक समाज के लिए साधना

करते साधक को इस मार्ग पर चलते समय कैसा-कैसा संकट, यातनाएँ, कष्ट सहन करने पड़ते हैं। कितने लालच, लोभ, प्रलोभनों, आकर्षणों को तुच्छ गिनकर त्यागने पड़ते हैं। यह बात गत अवतरणों में शारीरिक कष्ट, प्राकृतिक आकर्षण, युग की आराध्य देवी लक्ष्मी का प्रलोभन आदि में देखा है। अब इस अवतरण में और आगे के अवतरणों में साधक को अनोखी कसौटी पर चढकर उसमें से पार उतरने का वर्णन है। मोह, माया, ममता, प्रेम, लगाव, भावना, पूज्य भाव कौटुम्बिक कर्तव्य आदि को गौण मानकर ध्येयनिष्ठा, समाजनिष्ठा को महत्त्व देकर, अपने पारिवारिक फर्ज को दुख दर्द भरे हृदय से छोड़ना पड़ता है। इतना त्याग करने की ताकत हो, ऐसा साधक ही सच्चे अर्थ में साधक बनकर समाज को पतन के रास्ते से वापस मोड़कर उन्नति के पथ पर चलने के लिए मार्गदर्शन दे सकता है। नेतृत्व कर सकता है। ठीक है न!

इस अवतरण में साधक की किस प्रकार की कसौटी होती है, उसका ख्याल तो अवतरण पढने से आ जाता है। इसीलिए इसके बारे में ज्यादा लम्बी चर्चा की आवश्यकता महसूस नहीं होती। फिर भी थोड़ी.....।

फाइव स्टार होटल देखी नहीं है। दूसरों से जानने एवं सुनने से जो मिला उसी के सहारे कह सकता हूँ कि इस अवतरण में जो वर्णन है वह फाइव स्टार होटल से मिलता-जुलता हो ऐसा लगता है।

'पायल की सुमधुर ध्वनि जीवन की मस्ती बिखेर रही है।' बस इस एक शब्द का वर्णन मनुष्य को उन्मत्त, पागल बनाने के लिये काफी है। फिर चाँदनी या मेज पर पड़ी सुवासित सुरा-सभर सुराही का वर्णन करके प्रलोभन देने की आवश्यकता ही नहीं लगती। उससे आगे यौवन के उन्माद से पीड़ित, षटरस व्यंजन पूरित थाल का ज्यादा विश्लेषण करने की आवश्यकता लगती है? ऐसे वातावरण का, ऐसे मोहक माहोल का आज के क्षत्रिय युवक को सामना करना पड़े तो उसकी कैसी हालत होगी? सोचने पर लगता है वह घायल होकर धूल धुसरित हो जाए।

इस समय में साधक ऐसे दृश्य की, वातावरण की अवहेलना व उपेक्षा करता है। उस तरफ नजर भी नहीं करता और कहता है,-किन्तु साधक तो अंधा है। उसे साधना के अतिरिक्त अन्य दृश्य तो दिखता ही नहीं। ऐसे दृष्टान्तों की क्षत्रिय इतिहास में कमी नहीं। एकाध का अवलोकन करते हैं।

मराठा सरदार मदमस्त स्वरूपवान मुस्लिम युवती को कैद करके लाता है और शिवजी के सामने भेंट के रूप में उपस्थित करता है। शिवाजी सरदार की ओर आग उगलती आँखों से देखते हैं। सरदार को ऐसे हीन काम के फलस्वरूप लताड़ते हैं, दंडित करते हैं। ऐसा नीच कार्य भविष्य में कभी न करने की सलाह देते हैं। युवती को आश्वस्त करते हुए शिवाजी के शब्द थे-''माँ मैं तेरे पेट से जन्मा होता तो कितना स्वरूपवान होता।'' युवती को ससम्मान उसके परिवार में पहुँचाते हैं। यह है क्षत्रिय चरित्र का नमूना। ऐसे उच्च चरित्र के कारण ही क्षत्रिय सफल शासक के रूप में अपना कर्तव्य निभाता था और प्रजा को सुरक्षा और सलामती देता था।

हम चरित्रवान बनें, प्रजा का पालक, रक्षक और आधार बनने की समझ व शक्ति हमें परमेश्वर दे, ऐसी प्रार्थना।

अर्क- धन गया कुछ नहीं खोया, आरोग्य खोया कुछ खोया, चारित्र्य गया सब कुछ खोया।

चिंतन मोती-हे मनुष्यो तुम अपनी शक्ति को पहचानो। तुम मिट्टी के पुतले नहीं हो। हाड, मांस और रक्त के थेले नहीं हो। तुम निर्जीव मुर्दे नहीं किन्तु एक सजीव शक्ति सम्पन्न आत्मा हो। तुम्हारे जीवन का कुछ उद्देश्य है, जिसका पालन कर अपने जीवन को सफल बनाओ।

अवतरण-68

समर-प्रयाण की सुखद वेला है यह। मांगलिक गायन हो रहे हैं,-मरण-महोत्सव को समारोह के साथ मनाया जा रहा है, वीर-वेष की सज्जा से युक्त मैं महा प्रवाण को तत्पर हूँ। हाथों में कुमकुम थाल लिए कोई आरती को प्रस्तुत है। अश्रुपूरित नेत्रों में बैठा वह मौन संदेश कहीं मेरी

स्थिरता को चलायमान न कर दे–काजल जल कहीं मेरी उज्ज्वल कीर्ति को न धो डाले। सावधान हूँ! समर–विजय के पूर्व प्रणय–विजय करना होगा।

प्रणय विजय की विरागी है बात।
सावधान वीर कर जाए पार।।

अवतरण पढते ही शत्रु सेना के सामने भिड़ने जा रहे एक वीर योद्धा का चित्र दृश्यमान हो रहा है। मंगल गान हो रहा है। मरणोत्सव मना रहे हैं। उसके बारे में कुछ नहीं कहना है। यह तो राजपूती परम्परा थी। क्षत्राणियाँ युद्ध में प्रयाण करते अपने पति को कुमकुम, अक्षत का टीका लगाकर हंसते मुख से विदा देती थी। उस समय वीरांगना के नतनयन और मौन संदेश से वीरवेशधारी योद्धा कहीं अपनी स्थिरता को चलायमान न कर दे, ऐसी शंका जगती है। उस समय वीर सावधान होकर कहता है–''सावधान हूँ, समर विजय पूर्व प्रणय विजय करनी पड़ेगी।''

ऐसे विदाई के प्रसंग में पति की आँख में मोह और शंका का भाव परखती हुई विरांगना सोचती है कि मेरी ओर आकर्षण के कारण वीर पति युद्ध में शौर्य दिखाने में कच्चा न पड़े। क्या करूँ? तुरन्त ही निर्णय लेकर अपना शीश धड़ से अलग करके दासी के साथ अपने पति को भेंट भेजने वाली हाडी राणी का प्रसंग इतिहास प्रसिद्ध है। आप भी जानते होंगे, बाद में वीर राजपूत उस मस्तक को गले का हार बनाकर कैसा रणकौशल दिखाता है, उसका वर्णन यहाँ नहीं करना है। मुझे तो क्षत्राणियों के त्याग की, बलिदान की अमरगाथा याद दिलानी है। ऐसी क्षत्राणियाँ समर प्रयाण के समय मंगलगान गाती, मरण–महोत्सव मनाकर पति को शौर्य की प्रेरणा देती थी। धन्य है यह कौम।

इस अवतरण के भाव को समझने के लिए युद्ध समय पर विदाई के लघुप्रसंग के वर्णन के बाद अवतरण के मूल भाव को समझने का प्रयास करेंगे। इस समर प्रयाण में घोड़ा, भाला, तलवार लेकर लड़ने जाना नहीं है। तब? ये तो क्षत्रिय समाज में घुसपैठ कर गए अनिष्टों, स्वार्थ, कायरता, ईर्षा, द्वेष और बलवान शत्रुओं को नष्ट करने के लिए सामुहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली द्वारा जंग छेड़ा है। इस जंग के योद्धा का मनोमंथन गत अवतरण में हमने देखा। मनोमंथन के बाद अब कर्मक्षेत्र में कूद पड़ने का यह अडिग निर्णय करता है। तब कौटुम्बिय भावों, मोह, माया, ममता, प्रेम, लगाव के बंधनों को तोड़कर सामाजिक क्षेत्र में समर्पित होकर काम करना जितना कठिन है, वह, इस तथा आगे आनेवाले अवतरणों में पराक्रमी शूरवीर का दिल हिल जाए, हतप्रभ हो जाए ऐसे करुण प्रसंग आ सकते हैं।

ऐसे प्रसंग में सबसे पहले अपनी जीवनसंगिनी से विदा लेने के समय का भावपूर्ण वर्णन है। दुश्मन दल के सामने घोड़ा, भाला, तलवार लेकर लड़ने जाते योद्धा में तो समय मर्यादा रहती थी। लड़ाई लड़ते दो दिन, पांच–पन्द्रह दिन, इस पार या उस पार। परन्तु यह सामाजिक क्षेत्र में लड़ा जाने वाला युद्ध जीवनपर्यन्त का युद्ध है। जीवन के सभी क्षेत्रों को अलविदा करके, समझदारी पूर्वक, समर्पित भाव से पूरे आयुष्काल तक काम करना है। फिर कुटुम्ब की, पत्नी की या बच्चों की जिम्मेवारी गौण मानकर सामाजिक कार्य को प्राथमिकता देनी है। इसीलिए तो पू. तनसिंहजी ने एक सहगान की पंक्ति में संघकार्य के लिए कहा है, –

सरल है फूलों पे सोना, काम कांटों से यहाँ।

ये सब बातें जल्दी समझ में आने वाली नहीं हैं। इनको इस अवतरण और आगे वाले अवतरणों में किस तरह समझा पाऊंगा यह चिन्ता है। कहीं उल्टी–पल्टी बात न लिखी जाए और उलझन पैदा हो जाए। थोड़े में कहें तो पति–पत्नी के पास समाज कार्य के लिए आजीवन कार्य करने का संकल्प बता कर विदाई माँग रहा है। उस समय पत्नी का जो भाव है, वह साधक को भिगो देता है, कमजोर बना देता है। ऐसे समय साधक अपने संकल्प को दृढ करते हुए कहता है–'समर विजय पूर्व प्रणय विजय करना पड़ेगा।'

ऐसे संकल्पबद्ध साधक के परिवार को दुविधा,

(शेष पृष्ठ 14 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

पूज्य श्री तनसिंहजी ने हमें श्री क्षत्रिय युवक संघ रूपी जीवन दर्शन दिया है, जीने का तरीका दिया है, जीवन जीने का ढंग बताया है, एक विचार दर्शन दिया है जिसको अपना कर हम एक अच्छे व्यवसायी बन सकते हैं, एक अच्छे कर्मचारी की भूमिका अदा कर सकते हैं, एक अच्छे शासक साबित हो सकते हैं, सुलझे हुए नेक इन्सान बन सकते हैं, आध्यात्मिक राह के राहगीर बनकर अपनी मंजिल हासिल कर सकते हैं, इस जीवन की अद्‌भुत देन को समझ सकते हैं, यानी हर क्षेत्र में कामयाबी हासिल कर सकते हैं, विकास की ऊँचाइयों को छू सकते हैं, जीवन में सुख-शान्ति हासिल कर सकते हैं,-कारण कि श्री क्षत्रिय युवक संघ की शरण में जाने से हमारी दिशा और दशा बदल जाती है, हमारा नजरिया सही हो जाता है, सोच सही बन जाती है, जीने की समझ व कला हासिल हो जाती है, तो बस अब देर नहीं, कल नहीं, आज ही संघ की शरण में आ जाइये-आपका स्वागत है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ के समर्पित सभी स्वयंसेवकों के परस्पर सहयोग एवं संयुक्त प्रयासों से पूज्यश्री के इस दिव्य जीवन दर्शन के प्रचार व प्रसार को बढावा मिला। जिन लोगों ने पूरे मनोयोग से पूज्यश्री के इस काम में सहयोग दिया, उन समर्पित सहयोगियों के लिए पूज्यश्री तनसिंहजी ने कहा –

''मेरे श्रम, मेरे कार्य और मेरे भाग्य के एकमात्र आधार तुम्हीं हो। तुम ही वह आधार हो, जिस पर मैंने अपने सपनों को साकार बनाने की कल्पना की और मुझे अपने इस चुनाव पर सदा गर्व रहेगा। राजा के सदावृत में तुम्हारा स्वरूप कुछ और था। उस समय तुम मुझे बड़ी उत्सुकता से देखा करते थे। सेठ के सदावृत में तुमने मेरे अस्तित्व को स्वीकार किया और बाद में तुम अटूट विश्वास से मेरे मार्ग पर बिना प्रश्न और शंका के जुट गए। मैं आज गम्भीरतपूर्वक सोचता हूँ, तो मुझे ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता, जिसने तुम्हें प्रभावित किया हो, क्योंकि मेरे पास प्रभावित करने जैसी कोई चीज ही नहीं थी। सेठ के सदावृत में मुझे यह विश्वास हो गया, कि तुम मुझे पसन्द करते हो, पर क्यों करते थे, इसका कारण मैं नहीं जानता और उसके बाद तो सहस्रधारा के रूप में तुम दिग्दिगन्त से आकर मुझसे मिलने लगे। तब सोचता हूँ, यह एक दैविक संयोग था, अथवा पूर्व जन्मों के संस्कार थे, जिन्होंने तुम्हें और मुझे संसार में फिर एक बार साथ लाकर खड़ा कर दिया।''

संघ परिवार और पूज्य श्री तनसिंहजी के सम्बन्ध अलौकिक थे। इस सम्बन्ध में पूज्यश्री तनसिंहजी ने कहा, उन्हीं की जुबान से –

''देव योग से बना भिखारी,
व्यथा सामने रख दी सारी। ले ज्योति तज अन्धकार।''

पूज्यश्री तनसिंहजी दिव्य व्यक्तित्व के धनी थे। वे निश्छल, निष्कपट, निर्मल व उदारचित्त के व्यक्ति थे। वे अपने प्रति और अपने समाज के प्रति सदैव सच्चे बने रहे, ईमानदार बने रहे, इसलिए अनेकों ऐसे लोग भी जो पूज्यश्री के विचारों से भले ही सहमत न हों, फिर भी उनकी ओर अनायास ही खींचे चले आ रहे थे। ऐसे सहयोगियों को इंगित करते हुए पूज्यश्री ने कहा –

''सबसे अनोखी बात तो यह थी, कि विचारों से असहमत होते हुए भी तुम मेरी ईमानदारी का लोहा मानते थे और इसलिए अनिच्छा होते हुए भी तुम मेरे साथ रहा करते थे, तभी मुझे जन जीवन का वह रहस्य प्राप्त हुआ और उसी के आधार पर मैंने अपने भविष्य का ताना बाना बुना, कि समाज में कार्य करने के लिए ईमानदारी से बढकर और कोई वस्तु नहीं। इसलिए मैं सदैव तुम्हारे प्रति ईमानदार और उदार रहा हूँ। उसके बाद जब संघ जीवन में

अनेक प्रकार के दौर आए, तब भी उत्तरोतर तुम मेरे समीप आए और जब से तुम मेरे कौटुम्बीय बने, तब तो मुझे इस जीवन में जीने की प्रेरणा मिली।''

पूज्यश्री तनसिंहजी को संघ में ऐसे पात्रों की आवश्यकता थी, जो उनकी व्यथा बनकर समाज में जीवन जुटा सकें, उन्हें गौरव प्रदान कर सकें और सम्मान को जन सामान्य में बाँट सकें पूज्यश्री के सपनों को साकार करने वाले अनेकों ऐसे पात्र उन्हें मिले, जिन्होंने अपने जीवन का एक भी दिन, शक्ति का एक भी अणु, द्रव्य का एक भी पैसा और हृदय का एक भी पवित्र भाव पूज्यश्री तनसिंहजी से छिपाकर नहीं रखा। पूज्यश्री का ध्येय ही उन सबका ध्येय हो गया। सभी का जीवन संघ के रंग में रंग गया। सभी संघमय होकर संघ कार्य करने लगे। संघ में प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, कृपा, भक्ति आदि सभी भावों की पावन गंगा बहने लगी। संघ कार्य के समर्थन में चारों ओर से सहयोग के हाथ उठते देख व इस तरह संघ विचारधारा के प्रति सभी की जिज्ञासा, अनुराग व सहयोग की भावना देख मन मयूर नाच उठा और पूज्यश्री तनसिंहजी अपने गद्-गद् हृदय से गा उठे -

''**सहयोगी जीवन के सपने, मूर्त हुए रे स्वर्ग यहीं है।**''

समाज व संसार के कल्याण के लिए श्री क्षत्रिय युवक संघ का चयन पूज्यश्री तनसिंहजी ने किया और इस कार्य में समाज के अनेकों व्यक्तियों ने भरपूर सहयोग कर पूज्यश्री के हृदय में निसंदेह ठण्डक तो पहुँचायी पर यह सहयोग करके कोई अहसान जताये कि मैंने साथ दिया, सहारा दिया। यह कर्तापन का भाव आते ही पतन शुरू होगा। श्री क्षत्रिय युवक संघ ईश्वरीय कार्य है और ईश्वर ने इस कार्य में हम सभी को नियोजित कर रखा है, पर इस बात को हम नहीं समझते, परन्तु पूज्य श्री तनसिंहजी तो इस बात को जानते थे, समझते थे, इसलिए अलौकिक मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए, दुनियादारी से हटकर अपने सहयोगियों को सचेत करते हुए इस तरह उनका मार्गदर्शन किया -

''मेरे सहयोगी! आज तक तुमने जो कुछ इस क्षत्रिय समाज के लिए किया, उसका मैं सदैव ऋणी हूँ, पर ध्यान रखो, मैं इस ऋण को स्वीकार नहीं कर सकता। यह मेरी मर्यादा है। तुम्हारे बोझ से दबे होकर भी मैं प्रकट में कृतज्ञ नहीं हो सकता, क्योंकि इससे तुम्हारा हित नहीं होगा। तुम्हारे हित के लिए ही मुझे कृतघ्न बनना पड़ा है। तुम अनेक पेचीदे क्षणों में मेरे साथ रहे हो, मेरे सम्बल रहे हो, तुमने अनेक बार मुझे मार्गदर्शन किया है, पर जिस दिन तुमने यह कहा कि मैंने साथ दिया, सहारा दिया और मार्गदर्शन किया, उस दिन तुम्हारा पतन शुरू होगा। मेरे और तुम्हारे सम्बन्ध बड़े नाजुक और तलवार की धार पर चलने के समान हैं, क्योंकि हमारा संपूर्ण जीवन ही अलौकिक मर्यादाओं से परिपूर्ण है।'' **(क्रमश:)**

पृष्ठ 12 का शेष

मेरी साधना

अड़चन, तकलीफ और कष्ट झेलने पड़ते हैं। परिवार के भी समाज का हित हृदय में बस गया है, इसलिए वह अपने प्रियजन का वियोग, अड़चन, तकलीफ, कष्टों को हंसते मुख सहते रहते हैं। समाज के लिए त्याग, बलिदान करने का गौरव लेते हैं। अगले कुछ अवतरण लगाव सभर और करुण हैं। कैसे समझा पाऊँगा, यह असमंजस है, फिर भी जैसा होगा, लिखकर आपको भेंट करूंगा।

ऐसे अवतरण समझने की मुझ मति दें और समाज को समझने की शक्ति दें, ऐसी परमेश्वर से प्रार्थना है-

अर्क- दुख का रथ धरती से एक बेंत ऊँचा चले तब पीड़ा का दर्जा पाए। **- गुणवंतशाह**

चिंतन मोती- जीवन से जीवन प्रकाशित होता है। एक प्रकट दीपक लाखों दीपक प्रकट करता है और लाखों बुझे हुए दीपक एक भी दीपक को प्रकट नहीं कर सकते। बुझे हुए दीपक न बनें। अपनी आत्मशक्ति को प्रज्वलित करें और अपने प्रकाश से दूसरों को प्रकाशमान बना दें। स्वयं चमको और दूसरों को चमकाओ।

*

त्याग से सुख की प्राप्ति

– स्वामी रामसुखदास जी महाराज

जैसे एक गृहस्थ व्यक्ति का अपने पूरे परिवार के साथ सम्बन्ध रहता है, वैसे परमात्मा का भी पूरे संसार के साथ सम्बन्ध है। संसार में भले या बुरे, श्रेष्ठ या निकृष्ट कैसे ही प्राणी क्यों न हों, परमात्मा का सम्बन्ध सबके साथ समान है। भगवान ने कहा है-'समोऽहं सर्वभूतेषु' (गीता 9/29)। प्राणियों के साथ ही नहीं, परिस्थितयों, अवस्थाओं, घटनाओं आदि के साथ भी एक समान सम्बन्ध है। अब ध्यान दें कि किसी व्यक्ति में यदि विशेष योग्यता है, तो क्या उसके साथ परमात्मा का विशेष सम्बन्ध है? नहीं। उसमें जो विशेषता प्रतीत होती है, वह सांसारिक दृष्टि से ही है। परमात्मा का तो सबके साथ समान सम्बन्ध है; उस सम्बन्ध में कभी कमी या अधिकता नहीं होती। अत: किसी गुण, योग्यता या विशेषता से हम परमात्मा को प्राप्त कर लेंगे-यह बात संसार की विशेषता या महत्ता को लेकर की जाती है। यदि संसार से विमुख होकर देखें, तो सब-के-सब परमात्मा को प्राप्त करने के अधिकारी हैं। सांसारिक दृष्टि से जितनी योग्यता, विलक्षणता, विशेषता है, वह पूरी-की-पूरी मिलकर भी परमात्मा को खरीद ले-यह बात नहीं है। भगवान ने कहा है-'नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया' (गीता 11/53) मैं न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही देखा जा सकता हूँ।' बड़ा भारी, उग्र तप किया जाए, उससे भी भगवान पकड़ में नहीं आते-'न तपोभिरुग्रै:' (गीता 11/48)। तो भगवान पकड़ में कैसे आते हैं? त्याग से-'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' (गीता 12/12)। त्याग करना हो, तो बहुत धन हो तब भी त्याग करना है, कम धन हो तब भी त्याग करना है, ज्यादा योग्यता हो तब भी त्याग करना है, कम योग्यता हो तब भी त्याग करना है। सच्ची बात तो बड़ी विलक्षण है। वह यह कि जैसे पापों का त्याग करना है, वैसे पुण्यों का भी त्याग करना है। बात थोड़ी अटपटी दीखती है, पर गुणों का, योग्यता का, पुण्य का अभिमान तो त्यागना ही पड़ेगा। अभिमान का त्याग ही तो त्याग है, वस्तु का क्या त्याग? वस्तु तो आप से अलग है ही। तो संसार की जितनी योग्यता, परिस्थिति, गुण आदि हैं, उन सबके त्याग से तत्त्व की प्राप्ति होती है। तत्त्वप्राप्ति में देरी इसलिए लग रही है कि आपने योग्यता, परिस्थिति, गुण, व्यक्तित्व, सामग्री आदि को पकड़ रखा है। यहाँ तक कि त्याग को पकड़ रखा है कि 'मैं बड़ा त्यागी हूँ'-इस त्यागीपने का भी त्याग करना होगा, अन्यथा परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी। ऐसे ही 'मैं बड़ा वैरागी हूँ' इस विरक्ति का भी त्याग करना पड़ेगा, अन्यथा बन्धन बना रहेगा। परमात्मा का जैसे विरक्ति के साथ सम्बन्ध है, वैसे आसक्ति के साथ भी सम्बन्ध है। तो जैसे आसक्ति के साथ सम्बन्ध नहीं रखना है, वैसे विरक्ति के साथ भी सम्बन्ध नहीं रखना है। संपूर्ण वस्तुओं, अवस्थाओं, घटनाओं, क्रियाओं आदि से परमात्मा का सम्बन्ध एक समान है, तो इन सभी से विमुख होना पड़ेगा। इन सबसे विमुख होने पर तत्त्व की प्राप्ति होगी।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।

(मानस 5/43/1)

वास्तव में इन सबसे हम प्रतिदिन विमुख होते हैं। कैसे? जब हम संसार का काम करते-करते थक जाते हैं, तब संसार से विमुख होने की मन में आती है और हम नींद लेते हैं। इससे विश्राम मिलता है, शान्ति मिलती है, सुख-आराम मिलता है, ताजगी मिलती है, नीरोगता मिलती है। यह सब त्याग से ही मिलते हैं। इतना ही नहीं, सांसारिक भोगों का सुख भी भोग के त्याग से मिलता है। पर इस तरफ ख्याल न करने से भोग से सुख मिलता दीखता है। वास्तव में सुख भोगों के संयोग से नहीं, अपितु उसके वियोग से होता है। भोग के संयोग का वियोग होने से सुख होता है। जैसे भोजन करने से सुख मालूम होता है, तो वास्तव में सुख का अनुभव भोजन का त्याग करने अर्थात् भोजन कर चुकने के बाद होता है, जब तृप्ति हो जाती है। भोग भोगने से जब उससे अरुचि होती है, तब सुख होता है। सुख होता है, तब अरुचि हो जाती है। पहले क्या होता है, इसे मनुष्य पहचान

नहीं पाता। परन्तु त्याग से सुख होता है, इसमें कोई संदेह नहीं; किञ्चिन्मात्र भी संदेह नहीं। कितनी ही ऊँची-से-ऊँची सामग्री से संयोग हो, उसके द्वारा परमात्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। परमात्मा को सभी समान रूप से प्राप्त कर सकते हैं,चाहे वे किसी देश, वेश, सम्प्रदाय, धर्म आदि के क्यों न हों। केवल परमात्मा को पाने की उत्कट चाहना होनी चाहिये। परमात्मा प्राप्ति की चाहना की पहचान है-दूसरी किसी वस्तु को न चाहना। पर परमात्मा को भी चाहता है और दूसरी वस्तुओं को भी चाहता है, तो यह दुविधा यानी द्वन्द्व जब तक है, तब तक प्राप्ति नहीं होगी। जो निर्द्वन्द्व होता है, वही सुखपूर्वक मुक्त होता है। 'निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रभुच्यते।।' (गीता 5/3)। इच्छा-द्वेष से उत्पन्न हुआ यह द्वन्द्व ही मोह है, इसी से सब फँसे हुए हैं -

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप।।

(गीता 7/28)

जो इस द्वन्द्व रूप मोह से रहित है, वे दृढ़ निश्चय करके भगवान्-का भजन करते हैं-'ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रताः' (गीता 7/28)।

सांसारिक दृष्टि से अयोग्यता की अपेक्षा योग्यता बहुत श्रेष्ठ है, पाप की अपेक्षा पुण्य बहुत श्रेष्ठ है, पर इस श्रेष्ठता से कोई परमात्मा को खरीद ले, ऐसी बात नहीं है। इसलिए जो सच्चे हृदय से परमात्मा को चाहता है, वह अपनी स्थिति का त्याग कर देता है, उससे विमुख हो जाता है। विमुख होते ही उसे परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। अपनी जो स्थिति है, अपना जो व्यक्तित्व है, अपनी जो योग्यता या अयोग्यता है, उसे पकड़ने से ही परमात्म प्राप्ति में बाधा हो रही है। इसलिए उस सत्य-तत्त्व को प्राप्त करने के लिए कोई अनधिकारी, अयोग्य, अपात्र नहीं है। केवल उत्पत्ति-विनाश-वाली वस्तु की पकड़ ही उसमें बाधा दे रही है। अपनी पकड़ छोड़ी कि प्राप्ति हुई।

जब भूख लगती है, तब भोजन में सुख मिलता है-यह निर्विवाद बात है। ध्यान दें, पहला ग्राम लेने में जो सुख मिलता है, पाँच-दस ग्रास लेने के बाद क्या वही सुख रहता है? ज्यों-ज्यों हम भोजन करते चले जाते हैं, त्यों-ही-त्यों भोजन का सुख कम होता चला जाता है। अन्त में जब भूख समाप्त हो जाती है, तृप्ति हो जाती है, तब भोजन आपको सुख देता है क्या? जब भूख मिट जाए, तब ग्रास लेकर देखो कि क्या वह सुख देता है? सुख का आरम्भ रुचि से हुआ था। इसलिए सांसारिक भोग तब सुख देंगे, जब आप उनके बिना दु:खी होंगे। जिसके बिना आप दु:खी नहीं होते, वह कभी आपको सुख नहीं दे सकता। तो यह संसार दु:खी को सुख देता है, और सुख देकर वह मुनष्य को बाँधता है। केवल वहम रहता है कि अमूक पदार्थ से सुख मिला।

अब अरुचि से सुख कैसे मिलता है-यह बात समझें। किसी भोग में अरुचि हुए बिना क्या आप उस भोग का त्याग करते हैं? जब अरुचि होती है, तभी त्याग होता है। जब तक अरुचि न हो, तब तक सुख होता है। यह बात मैंने पहले ही कह दी कि अरुचि से सुख होता है या सुख से अरुचि होती है-इसका विश्लेषण जरा कठिन है, पर बातें दोनों सही हैं। भोग भोगते-भोगते उससे अरुचि होती ही है। अब आप ध्यान दें। अरुचि का अर्थ है-सम्बन्ध-विच्छेद। भोग से सम्बन्ध-विच्छेद होता है तो सुख होता है। सम्बन्ध-विच्छेद क्या है-यह खास समझने की बात है। विच्छेद का तात्पर्य है उस भोग को भोगने की शक्ति का नाश होना कि अब आगे भोग नहीं सकते। तो शक्ति का नाश होने से ही अरुचि और सुख दोनों हुए। यदि शक्ति का नाश न होता तो अरुचि कैसे होती? तात्पर्य यह है कि वह सुख भोग का नहीं है अपितु शक्ति के नाश अर्थात् थकावट का है। बहुत दौड़ने के बाद जब बैठते हैं, तो सुख मालूम होता है। तो सुख थकावट का है। अत: भोग भोगने की शक्ति के नाश का नाम ही सुख हुआ। नाश कहो या अरुचि कहो। भोगी पुरुष भोग्य वस्तु का तो नाश करता है और अपना पतन करता है। विरक्त पुरुष ऐसा नहीं करता। मनुष्य भोग में सुख मानकर भोग का त्याग नहीं करता, इसलिए न तो वह भोग के अन्त में होने वाली अरुचि को स्थायी कर पाता है और न त्याग के सुख को ही स्थायी कर पाता है। यदि वह समझ ले कि भोग से सम्बन्ध-विच्छेद में ही सुख है, तो फिर वह भोग में फँसेगा नहीं।

✻

त्रिविध कर्म

– श्री जयदयालजी गोयनका

कर्म तीन प्रकार के होते हैं– प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण। किये हुए शुभ-अशुभ और मिश्रित कार्यों में से फल देने के लिए सम्मुख हुए कर्मों का नाम 'प्रारब्ध' है, जो सुख-दुख के निमित्त भूत जाति, आयु और भोग दिया करते हैं। 'संचित' उन कर्मों का नाम है, जो अनेक जन्मों में और इस जन्म में किये हुए कर्म हैं और जो भोग देने के लिये सम्मुख नहीं हुए हैं, पर कर्माशय में इकट्ठे पड़े हैं। 'क्रियमाण' उन कर्मों को कहते हैं; जो वर्तमान में शुभ-अशुभ और मिश्रित कर्मफल, आसक्ति और कर्तापन के अभिमानपूर्वक किये जाते हैं। इन कर्मों को 'पुरुषार्थ' भी कहते हैं; किन्तु जो कर्म फलासक्ति और कर्तापन के अभिमान से रहित होकर किया जाता है, वह कर्म वास्तव में कर्म ही नहीं है। (गीता 4/20; 18/17)

इन तीनों में 'संचित' के द्वारा विभिन्न प्रकार की शुभाशुभ स्फुरणाएँ होती हैं, पर उनके अनुसार कर्म करना, न करना हमारे अधिकार में है। शुभ स्फुरणा होने पर भी पुरुषार्थ के अभाव से कर्म न होने के कारण वह सफल नहीं होती। प्रारब्ध से भी स्फुरणा होती है और उसके अनुसार कर्म होते हैं। पर यहाँ भी कर्म करने को मनुष्य बाध्य नहीं है। हाँ, प्रारब्धानुसार फलभोग अवश्य होता है। शुभ प्रारब्ध होगा तो बिना पुरुषार्थ के ही अनिच्छा या परेच्छा से शुभ फल मिल जाएगा। इसी प्रकार अशुभ भी मिल जाएगा। क्रियमाण (पुरुषार्थ) तो नया फल पैदा करता ही है। अवश्य ही यह नियम नहीं है कि वह अभी तुरन्त ही फल दे दे। प्रबल कर्म होने पर फलदानोन्मुख प्रारब्ध के बीच में ही वह प्रारब्ध बनकर अपना फल दे सकता है। जैसे किसी के प्रारब्ध में पुत्र का योग नहीं है; परन्तु पुत्रेष्टि-यज्ञ सविधिसम्पन्न होने पर नवीन प्रारब्ध बनकर पुत्रोत्पादन में कारण बन सकता है। इसी प्रकार आयु के विषय में समझना चाहिये। जैसे सावित्री ने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से यमराज को प्रसन्न करके उनसे वरदान के रूप में अपने पति के लिये दीर्घायु प्राप्त कर ली थी। यह भी नवीन प्रारब्ध था, जो प्रबल पुरुषार्थ (क्रियमाण) का फल था। परन्तु सुख-दुःख आदि फलों के भोग में प्रधानता पूर्वकृत कर्मों से बने हुए प्रारब्ध की ही है।

संचित से स्फुरणा होती है, प्रारब्ध से सुख-दुःख को देने वाले जाति, आयु और भोगों की प्राप्ति होती है और पुरुषार्थ से नये कर्म बनते हैं। यहाँ एक दृष्टान्त के द्वारा इन तीनों प्रकार के कर्मों के सम्बन्ध में यह दिखलाया जाता है कि किस कर्म की प्रबलता से कैसे क्या कार्य होता है।

एक जगह तीन मित्र बैठे थे। उनसे किसी ने आकर कहा कि अमुक स्थान पर एक बड़े महात्मा आये हुए हैं, इस पर इनमें से एक ने कहा कि 'चलो भाई! हम भी दर्शन कर आवें।' दूसरे ने कहा-'मैं तो नहीं जाऊँगा। तुम लोग भले ही जाओ।' तीसरे ने जाना स्वीकार किया और वे दोनों महात्मा के स्थान पर पहुँचे वहाँ जाने पर पता लगा कि 'महात्मा अभी थोड़ी ही देर हुई शहर में गये हैं, कुछ देर में आवेंगे।' इस पर तीसरा जो गया था, वह तो वहाँ जमकर बैठ गया। उसने कहा कि 'कितनी ही देर में आवें, मैं तो दर्शन करके ही जाऊँगा।' पहले ने कहा-'भाई! इतनी देर कौन बैठे, मैं तो वापस जा रहा हूँ।' अतएव तीसरा वहीं बैठा रहा और पहला लौट गया। इधर महात्मा शहर में घूमते-घामते उसी स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ दूसरा बैठा था, जो महात्मा के दर्शनार्थ जाने से इन्कार करके डेरे पर ही रह गया था, उसको वहाँ महात्मा के दर्शन हो गये; कहीं जाना नहीं पड़ा। महात्मा वहाँ से लौटकर अपने स्थान पर गये और वहाँ उस तीसरे को भी दर्शन हो गये, जो वहाँ जमकर बैठ गया था। दूसरा जो वहाँ से लौट आया था, वह दूसरे रास्ते से लौटा। अतः उसको महात्मा के दर्शन हुए ही नहीं। इन तीनों में पहले का तो शुभ संचित प्रबल था, जिसने महात्मा के पास जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु पुरुषार्थ की कमी

से वहाँ जाकर भी वह बैठा नहीं, लौट आया। दूसरे का शुभ प्रारब्ध प्रबल था, जिसने घर बैठे महात्मा के दर्शन करा दिये और तीसरे का शुभ पुरुषार्थ प्रबल था; जिसके कारण वह दृढ़तर होकर वहाँ बैठ गया और दर्शन करके ही लौटा।

संसार में चार पदार्थ हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म और मोक्ष की सिद्धि में तो पुरुषार्थ प्रधान है, तथा अर्थ और काम की सिद्धि में प्रारब्ध प्रधान है। अज्ञानी लोग धर्म और मोक्ष को प्रारब्ध पर छोड़ देते हैं। वे धर्म और मोक्ष से वंचित रह जाते हैं; क्योंकि धर्म का पालन और मुक्ति का साधन नवीन कर्म है, पूर्वकृत कर्मों का फल नहीं है। मनुष्य का उत्तम स्वभाव और उत्तम संचित कर्म प्रेरक होने से सहायक हैं। प्रारब्ध कर्म बीमारी आदि अप्रिय के संयोग और प्रिय के वियोग को निमित्त बनाकर कमजोर आदमी के लिये धर्म और मोक्ष के साधन में बाधक हो जाया करते हैं एवं कहीं सत्संग आदि के संयोग से सहायक भी हो जाया करते हैं; किन्तु धर्म के पालन और मोक्ष के साधनों में मुख्य हेतु प्रयत्न (पुरुषार्थ) ही है, क्योंकि धर्म का पालन और मुक्ति का साधन अपने-आप होना सम्भव नहीं है। इसलिये मनुष्य को धर्म के पालन ओर मुक्ति के साधन के लिए महत्कृपा का आश्रय लेकर कटिबद्ध हो तत्परता से चेष्टा करनी चाहिये।

प्रारब्ध

मूर्ख मनुष्य अर्थ और काम की सिद्धि के लिये झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि नाना प्रकार के पाप करते हैं; किन्तु उससे कुछ नहीं मिलता। जो कुछ मिलता है, वह उसके पूर्व के प्रारब्ध से ही मिलता है और वह बिना पाप किये भी अवश्य मिलेगा ही। मनुष्य प्रयत्नपूर्वक पाप करता है पर उसका फल जो दुःख है, उसे भोगना नहीं चाहता, किन्तु अनेक प्रतीकार करते हुए भी उसे पाप का फल दुःख भोगना ही पड़ता है। जिस प्रकार पाप का फल दुःख अनेक प्रतीकार करने पर भी नहीं रुकता, उसी प्रकार पुण्य का फल अर्थ और कामरूप सुख भी बिना प्रयत्न किये ही प्राप्त होगा। प्रयत्न तो केवल निमित्त-मात्र है, क्योंकि अर्थ और काम की सिद्धि में मुख्य हेतु प्रारब्ध ही है। जो कुछ प्राप्त होना है, उससे अधिक तो होगा नहीं और जो होना है, वह प्रतीकार करने पर भी रुक नहीं सकता, अतएव अर्थ और काम की सिद्धि के लिए पाप करना निरी मूर्खता है।

मनुष्य अज्ञानवश अर्थ और काम को पुरुषार्थ के अधीन मानकर उनकी सिद्धि के लिये अपना जीवन लगा देते हैं तथा नाना प्रकार के पाप करके आसुरी योनियों और नरकों में गिरते हैं, किन्तु यदि अर्थ और काम की सिद्धि पुरुषार्थ से होती तो सभी आदमी धनी बन जाते एवं सभी की कामना भी सफल हो जाती; क्योंकि सभी धनी बनना चाहते हैं तथा सभी को अपनी कामनाओं की पूर्ति की भी इच्छा है। पर ऐसा देखने में नहीं आता। कहीं-कहीं पूर्व के प्रबल प्रारब्ध से काम और अर्थ की सिद्धि हो जाती है तो मूर्ख मनुष्य उसे अपने पुरुषार्थ से हुई मान बैठते हैं; परन्तु यह बात गलत है। इसलिये मनुष्य को अर्थ और काम के परायण होकर अपने मनुष्य-जीवन को नष्ट करना उचित नहीं है।

प्रारब्ध का भोग तीन प्रकार से होता है-अनिच्छा से, परेच्छा से और स्वेच्छा से।

मनुष्य न तो मरना ही चाहता है और न दुःख ही भोगना चाहता है। पर पूर्वकृत पापों के फलस्वरूप वज्रपात, महामारी, अकाल, अग्नि और बाढ़ आदि की पीड़ा से मनुष्य दुःखित हो जाता है और कोई-कोई मर भी जाता है तथा इसी प्रकार पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से किसी को अकस्मात् कहीं गड़े हुए धन की प्राप्ति हो जाती है और किसी की पैतृक सम्पत्ति का मूल्य बढ़ जाता है, जो सुख का हेतु है। यह सब अनिच्छा-प्रारब्ध का भोग है।

पूर्वकृत पापों के फलस्वरूप दुःख के हेतु भूत चोर, डाकू, सिंह, व्याघ्र आदि के द्वारा धन, जन और शरीर की हानि हो जाती है और इसी प्रकार पूर्वकृत पुण्यों के प्रभाव से उसे कोई दत्तक पुत्र बना लेता है या कोई राजा राज्य सौंप देता है, जो कि सुख का हेतु है। यह सब परेच्छा-प्रारब्ध का भोग है।

उपर्युक्त अनिच्छा और परेच्छा-प्रारब्ध से प्राप्त

सुख-दुःख भोग के विषय में भोक्ता मनुष्य बिल्कुल परतंत्र है। स्वेच्छापूर्वक किये हुए कृषि और व्यापार आदि में पूर्वकृत पापों के फलस्वरूप दुःख का हेतुभूत नुकसान लग जाना तथा अपने और अपने कुटुम्बीजनों के रोगादि की निवृत्ति के लिये किये जाने वाले औषधादि उपचारों का विपरीत परिणाम होना और इसी प्रकार पूर्वकृत पुण्यों के प्रभाव से सुख के हेतुभूत स्त्री, पुत्र, धन, गृह आदि की प्राप्ति के लिये इच्छापूर्वक किये हुए प्रयत्न की सफलता का होना-यह सब स्वेच्छा-प्रारब्ध भोग है।

उपर्युक्त प्रकार से इस जन्म में जो प्रारब्ध का भोग होता है, वह अधिकांश में तो पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों का ही फल होता है, किन्तु कोई-कोई इस जन्म में किया हुआ बलवान क्रियमाण कर्म भी तुरन्त प्रारब्ध बनकर इसी जन्म में फल देने के लिये प्रस्तुत हो जाता है; जैसे कोई पुरुष परस्त्री गमन आदि पाप कर्म करता है, तो उसके फलस्वरूप उसे उपदंश, सजाक, धातुक्षय आदि बीमारियाँ हो जाती हैं तथा इसी प्रकार कोई स्त्री, पुत्र, धन की प्राप्ति और रोग की निवृत्ति की कामना से यज्ञ, दान, तपरूप पुण्यकर्म विधि और श्रद्धापूर्वक करता है तो उसके फलस्वरूप उसे उपर्युक्त इष्ट की प्राप्ति हो जाती है। परन्तु जो मनुष्य आत्मोद्धार के लिये भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और निष्काम कर्म आदि साधनों का तत्परता से अनुष्ठान करता है, उसे तो उसके फलस्वरूप इसी जन्म में शीघ्र ही मोक्ष (भगवत्प्राप्ति) प्रत्यक्ष ही हो जाता है।

संचित

मनुष्य इस जन्म में जो कुछ क्रियमाण कर्म करता है, उसमें से जिस अंश का प्रारब्ध बनकर मनुष्य को भोग देने के लिये प्रस्तुत हो जाता है, वह तो फल भुगताकर क्षय हो जाता है और उसके सिवा इस जन्म के बचे हुए क्रियमाण कर्म पूर्वजन्मों के संचित कर्मों में सम्मिलित हो जाते हैं। इन संचित कर्मों के समूह का भक्ति, ज्ञान और निष्काम कर्म आदि साधनों से क्षय होकर विनाश हो सकता है। जब तक इस संचित कर्मसमूह का विनाश नहीं हो जाता, तब तक वे भावी जन्म को देते रहते हैं।

मनुष्य जो भी कुछ पुण्य, पाप और मिश्रित कर्म करता है, उसके दो प्रकार के संस्कार उसके हृदय में जमते हैं- (1) सुख दुःखादि, जो जाति, आयु, भोग को देने वाले हैं और (2) सात्त्विक, राजस, तामस-वृत्तिरूप संस्कार जो कि स्वभाव को बनाने वाले हैं। इनमें पहले प्रकार के संस्कार तो फल भुगता कर शान्त हो जाते हैं; किन्तु सात्त्विक, राजस, तामस-वृत्तिरूप संस्कार स्वभाव के रूप में रहते हैं और वे भविष्य में नवीन पुण्य-पाप आदि कर्मों के प्रेरक होते हैं। अतएव मनुष्य को अपने स्वभाव के सुधार के लिये विवेक-वैराग्यपूर्वक सत्संग, भक्ति, ज्ञान और निष्काम कर्म के द्वारा राजसी, तामसी वृत्तियों का शमन करके केवल सात्त्विक, वृत्तियों का प्रवाह बहाना चाहिये। इस प्रकार साधन करने से संचित कर्म और राजसी-तामसी वृत्तियाँ-दोनों का क्षय होकर मनुष्य भगवत्प्राप्ति के लिये समर्थ हो जाता है।

क्रियमाण

राग, द्वेष, कामना, ममता और अहंकारपूर्वक मन, वाणी, शरीर से जो पुण्य, पाप और मिश्रित कर्म किये जाते हैं, वे क्रियमाण कर्म हैं तथा स्वेच्छा-प्रारब्ध भोग के निमित्त भी जो कर्म होते हैं, वे भी क्रियमाण के ही अन्तर्गत हैं; क्योंकि उनमें कर्तव्य बुद्धि के सिवा जो शास्त्र के अनुकूल और शास्त्र के प्रतिकूल क्रिया होती है, वह पुण्य और पाप रूप होने के कारण क्रियमाण में ही शामिल है।

जिनको ईश्वर और प्रारब्ध पर विश्वास नहीं है, वे अज्ञानी मनुष्य झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि के द्वारा अर्थ और काम की सिद्धि प्रारब्ध से अतिरिक्त पुरुषार्थ से करना चाहते हैं, उनकी वह सिद्धि प्रारब्ध से अतिरिक्त तो हो ही नहीं सकती। जो कुछ प्राप्त होता है, प्रारब्ध के अनुसार ही होता है, परन्तु वे मूर्ख शास्त्र विरुद्ध क्रिया करके व्यर्थ ही पाप के भागी होते हैं; किन्तु जिनको ईश्वर और प्रारब्ध पर विश्वास है, वे कोई भी पाप-क्रिया न करके शास्त्रानुकूल कर्म करते हुए सत्य और न्यायपूर्वक ही अर्थ और काम की सिद्धि चाहते हैं, वे भारी आपत्ति पड़ने पर भी सत्य, न्याय और धर्म से विचलित नहीं होते। अतः

प्रारब्ध के अनुसार उनका कार्य तो सिद्ध होता ही है, वे पुण्य के भागी भी होते हैं और निष्काम भाव से करने पर तो परम कल्याण को प्राप्त हो सकते हैं।

जो कर्म राग, द्वेष, कामना, ममता और अहंकार से रहित होकर किये जाते हैं अथवा भगवदर्थ या भगवदर्पण-बुद्धि से किये जाते हैं, वे कर्म वास्तव में कर्म ही नहीं है, इसलिये वे भी क्रियमाण में शामिल नहीं होते तथा स्वप्न में होने वाली मानसिक क्रियाएँ भी क्रियमाण में शामिल नहीं हैं; क्योंकि वे समझ-बूझकर की हुई नहीं हैं, उनमें कर्ता निद्रा के वशीभूत होने के कारण परतंत्र है, इसीलिये वे अनिच्छा और स्वेच्छा संयुक्त प्रारब्ध भोग में ही शामिल हैं।

प्रारब्ध कर्म तो मनुष्य को भोगने ही पड़ते हैं, अत: वे भोग-भुगताकर क्षय हो जाते हैं तथा जो बचे रहते हैं, वे परमात्मा की प्राप्ति में रुकावट नहीं डालते। भगवत्प्राप्ति के बाद भी वे प्रारब्ध से होने वाले सुख-दु:खादि के निमित्त शरीर में होते रहेंगे; अत: उनके रहने से हमें कोई हानि नहीं है। विवेक और वैराग्यपूर्वक सत्संग, भक्ति, ज्ञान और निष्काम कर्म आदि साधनों द्वारा प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण-तीनों का नाश होकर परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। परमात्म प्राप्त पुरुष में संचित कर्मों का तो अत्यन्त अभाव है ही और क्रियमाण कर्म उनके लागू नहीं पड़ते; क्योंकि उनसे होने वाली क्रियाओं में राग, द्वेष, कामना, ममता, अहंकार आदि विकारों का अत्यन्त अभाव है, इसलिये उनके कर्म कर्म ही नहीं हैं। इसके सिवा उनके द्वारा जो प्रारब्ध से होने वाली घटनाएँ हैं, उनमें राग-द्वेष का अभाव होने के कारण कोई भी सुख-दु:ख का भोक्ता नहीं रहता; अत: उनके प्रारब्ध कर्म रहते हुए भी न रहने के ही समान हैं, केवल सुख-दु:खों की निमित्तमात्र घटनाएँ उनमें प्रतीत होती हैं; परन्तु जो मनुष्य प्रारब्धानुसार सुख-दु:ख और हर्ष-शोकादि विकारों से सर्वथा रहित है, उसका प्रारब्धानुसार सुख-दु:खादि के निमित्त होने वाली घटनाओं से वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। अत: उसके प्रारब्ध भोग रूप कर्म भी एक प्रकार से क्षय ही माने गये हैं।

श्रुति कहती है -

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

(मु.उ. 2/2/8)

'उस परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने पर इस पुरुष की हृदयग्रन्थि टूट जाती है, सारे संशयों का छेदन हो जाता है, और इसके प्रारब्ध, क्रियमाण रूप समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं।'

✻

पृष्ठ 7 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

है तो आज हम पुन: वही उजाला देखना चाहते हैं.... इस संसार में, अंधकार के कारण जो लोप सा हो गया है... उस सबको जागृत करके... लोगों की चेतना को जागृत करके...हम सुख शान्ति का संदेश संसार में फैलाना चाहते हैं। और उस शान्ति का झण्डा लेकर... अग्रदूत बनने वाले हम ही हों, यह हमारा संकल्प होना चाहिए। ऐसे संकल्प के साथ जो आज से ही जुट जाएँगे तैयारी में, तो आप... संपर्क में ज्यों-ज्यों आप निकट आते जाएंगे और ज्यों-ज्यों संसार आता जाएगा... इसकी आवश्यकता समझ में आती जाएगी। और आलोचना फिर नहीं होगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आलोचना करने वाले आलोचना ही करेंगे। जो मार्ग पर नहीं चल सकते.... वो दूसरों को कहते हैं कि ये गलत मार्ग पर चल रहे हैं... इससे कभी घबराना नहीं है। लेकिन एक अपने आप में संकल्प यह रखना है-जो कदम आपके चले हैं वो रुकेंगे नहीं, थकेंगे नहीं। चट्टाने आ जाएँ हम भिड़ जाएंगे, नदियों के रुख को मोड़ देंगे लेकिन ये जो हम संकल्प ले रहे हैं उसको पूरा किए बिना... हम न केवल इस जीवन में... लेकिन आगे के जीवन प्राप्त करके भी... पुन: इन्हीं लोगों के बीच में आकर के... और हम यह कार्य करेंगे, तो निश्चित रूप से केवल हमको ही नहीं मिलने वाला है, सारे संसार को..इसका लाभ मिलने वाला है।

जय संघशक्ति!

जीवन का तो फल मैं पा ही गया

– कृपाकांक्षी

पूज्य तनसिंहजी ने 4 दिसम्बर, 1966 को एक गीत लिखा–

राही जब से आया मैं तेरी नगरिया,
जगमग हो गई मेरी डगरिया।

इसी गीत के पहले अंतरे के अंत में उन्होंने लिखा–

जीवन का तो फल मैं पा ही गया।

हमारा प्रश्न हो सकता है कि मात्र नगरिया में आने और डगरिया के जगमग होने मात्र से जीवन का फल कैसे मिल गया? फल तो परिणाम होता है और परिणाम तो उक्त कार्य के पूर्ण होने पर प्रकट होता है। लेकिन यहाँ तो केवल इस नगरिया में आने से डगरिया (मार्ग) प्रकाशित मात्र हुई है, मार्ग दिखाई देने लगा है, क्या इतने मात्र से ही जीवन का फल मिल गया?

इस प्रश्न पर विचार करने पर हमारे सामने नया प्रश्न खड़ा होता है कि आखिर जीवन का फल है क्या? हमने शिविरों में सुना कि मानव जीवन का लक्ष्य सच्चिदानन्द की प्राप्ति है। जो लक्ष्य होता है, वही प्राप्त होने पर फल हो जाता है। ऐसे में जीवन का फल भी वही हुआ जो लक्ष्य है। तो इस पंक्ति के अनुसार नगरिया में आये, डगरिया जगमग हुई और फल मिल गया। तो क्या डगरिया जगमग होने से ही परमेश्वर मिल गया?

तब प्रश्न खड़ा होता है कि कौनसी नगरिया और कौनसी डगरिया? सहगायन को गाते हैं, पढते हैं तो स्पष्ट संकेत है कि नगरिया तो श्री क्षत्रिय युवक संघ है। इस नगरिया में आने से हमारे जीवन की डगरिया जगमग हुई, अर्थात् जीवन का मार्ग सुस्पष्ट हो गया। वास्तव में किसी भी परिणाम के प्रकट होने की पहली शर्त मार्ग का स्पष्ट होना ही होता है। ज्यों ही मार्ग स्पष्ट हो जाता है तब केवल चलना ही शेष रहता है। यह साधक के स्वयं के वश की बात है और जो उसके स्वयं के वश की बात है उसे वह कर लेगा तो परिणाम प्रकट होना ही है।

महत्त्वपूर्ण बात मार्ग मिलना है, जीवन का प्रारम्भिक हेतु तो यही होता है कि उसे उचित मार्ग मिल जाये। संसार के कोलाहल के बीच जीवन के अन्तिम उद्देश्य की ओर प्रवाहित करने वाला मार्ग मिलना अति महत्त्वपूर्ण बात है। वर्तमान व पूर्व जन्मों के पुण्य कर्मों के फल प्रकट होने पर उन पुण्यों के उदय हुए बिना मार्ग नहीं मिल सकता। इस प्रकार जीवन शृंखला के अब तक के पुण्यों का फल ही है मार्ग का मिलना, नगरिया में आना और डगरिया का स्पष्ट होना। अब केवल मार्ग पर बने रहने का ही पुरुषार्थ शेष रहता है। यदि कोई व्यक्ति मार्ग पर बना मात्र ही रहता है, मार्ग के एक तरफ होकर मील का पत्थर नहीं बनता तो मंजिल की ओर प्रवाह सुनिश्चित है। फिर जीवन का परिणाम प्रकट होने में देरी हो सकती है, पर मिलना तय है। इसीलिए कहा है कि– **जीवन का तो फल मैं पा ही गया।** लेकिन क्या यह भी इतना सरल है? सांधिक जीवन के इतिहास को उठाकर देखें कि कितने लोग जीवन भर इस मार्ग पर बने रहे। इसी सहगीत में आगे के अंतरों में लिखा है– **पूरे जीवन भर हर्षा ही गया।** क्या हम जब से इस मार्ग पर आए हैं तब से जीवन भर हर्षाये ही हैं? हमारे स्वयं के संघ जीवन को देखें कि क्या कभी हमारे हर्ष में बाधा नहीं पड़ी?

हमारे आसपास उपलब्ध हमारे अग्रगामियों और सहमार्गियों में कितने ऐसे हैं जो इस मार्ग पर जीवन भर हर्षाते रहे हैं? और जो जीवन भर हर्षाये हैं, उनका जीवन क्या हम सबको आकर्षित नहीं करता? क्या उनके जीवन में जीवन का फल प्रकट होते हमें दिखाई नहीं देता? इसलिये हमारा पुरुषार्थ तो यही शेष रहता है कि अब तक की जीवन शृंखला के पुण्य पुरुषार्थ के फलस्वरूप हमें जो मार्ग मिला है, उस पर हम दृढ़ता पूर्वक बने रहें। हर्षाते हुए बने रहें और ऐसा हम कर लेते हैं तो जीवन के अन्तिम फल के प्रकट होने का मार्ग निश्चित रूप से प्रशस्त होगा। जैसा हमारा पुरुषार्थ होगा, जितना हमारा पुरुषार्थ होगा, उतनी ही शीघ्रता से वह फल प्रकट होगा।

लेकिन मार्ग पर बने रहने की प्रेरणा, मार्ग पर बने रहने की अनुकूलता भी परमेश्वर की कृपा के बिना सम्भव नहीं है, इसलिए, इसके लिये उस परमसत्ता की कृपा के अवतरण हेतु प्रार्थना भी हमारे पुरुषार्थ में शामिल है। इसलिए आएं हम उन परमेश्वर से प्रार्थना करें कि जिस प्रकार उन्होंने हमें जीवन के फल का प्रारम्भिक स्वरूप यह मार्ग प्रदान किया है, इसी प्रकार कृपापूर्वक इस मार्ग पर जीवनभर हर्षाते हुए बने रहने की शक्ति भी प्रदान करें।

मेरा अहंकार

– महिपालसिंह चूली

मानव की मूल प्रवृतियों में से अहंकार एक महत्त्वपूर्ण प्रवृति है। यह जन्मजात है। इस अहंकार को सामाजिक या राष्ट्रीय स्वाभिमान में रूपान्तरित करने के लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने, महात्माओं व महापुरुषों ने अनेक उपाय बताये हैं, परन्तु उन उपायों से अपने अहंकार को रूपान्तरित करने में सफलता प्राप्त करने वाले कुछ विरले ही होते हैं। मैं अपनी बात करूँ तो पिछले तीन दशकों से संघ कार्य करते हुए बस इतना ही समझ पाया हूँ कि अहंकार मानव का एक निकटतम शत्रु है। परन्तु उसकी पहचान करना और उसे पूर्ण रूप से नियंत्रित करना या रूपान्तरित करना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए वश की बात नहीं है। विगत में हमारे सामाजिक व राष्ट्रीय भाव तथा प्रतिष्ठा को जितनी गहरी हानि उस प्रवृति ने पहुँचाई है, उसके साथ-साथ इसने हमारे अन्दर भी गहरी जड़ें जमा ली हैं।

छिद्रान्वेषण की अपनी आदतन प्रवृति के अनुसार नजर दौड़ाता हूँ तो देखता हूँ कि अधिकांश व्यक्ति इस शत्रु की चपेट में नजर आते हैं। किसमें किस रूप में यह शत्रु प्रकट होता है, यह कल्पनातीत है। आम सांसारिक लोग तो अहंकार के प्रवाह में बह ही रहे हैं, पर हम संघ के स्वयंसेवक, जो सामुहिक संस्कारमयी साधना से गुजर रहे हैं, उनमें से भी कुछ लम्बी संघ जीवन की यात्रा के पश्चात भी अभी इसे नियंत्रित नहीं कर पा रहे हैं। उनकी लम्बी संघ यात्रा के बाद भी जब उन पर अहंकार की छाया देखते हैं तो आश्चर्य होता है। शायद इसकी पहचान वे नहीं कर पाए क्योंकि यह भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है। मुझे लगा कि किसी को लम्बे समय तक संघ कार्य करने का अहंकार है तो किसी को अपनी विद्वता का, किसी को अपनी लच्छेदार वाणी का तो किसी को अपने लेखन का। किसी को महज पढी हुई जानकारी के आधार पर ही आध्यात्मिकता का वहम हो गया है। कुछ लोगों की यह स्थिति देखता हूँ तो मुझे लगता है मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिए तो यह दुश्मन हर पल साथ ही रहता है। लगता है कि मैं तो अज्ञानताओं और अहंकार के साथ ही जीवन जिये जा रहा हूँ, फिर भी अपने आपको सर्वज्ञ मान बैठा हूँ। तब क्या करूं? पू. तनसिंहजी की ये पंक्तियाँ याद आती हैं –

समझ में न आए तो, यही बात जानो,
अभी कई रातें जगानी है बाकी।

तब थोड़ा धैर्य बंधता है कि बस चलता जाऊँ। जैसा कहा जाए, केवल वैसा करता जाऊँ। मेरे प्रेरक की हर आज्ञा को मानने का प्रयास करूँ और अपने आपको इस पवित्र कर्म में जागृति के साथ लगाए रखूं। जब ऐसे चिन्तन की ओर रुख करता हूँ तो नजर कुछ अन्य स्वयंसेवकों की ओर भी जाती है। कितने सहज और निर्मल हैं वे लोग। जिनको न विद्वता से कुछ लेना देना, न अल्पज्ञता से। बस बढे चले जा रहे हैं अपने इस कर्म पथ पर। बिना थके निरन्तर अग्रसर हैं। न पद या प्रतिष्ठा का प्रश्न है न प्रशंसा प्राप्त करने का। ध्यान है तो केवल इतना कि कोई बाधा, परिस्थिति अथवा प्रलोभन मेरे साधना पथ में विराम न लगा पाए। मैं भी उनका अनुसरण धैर्यपूर्वक कर सकूं, यह चाह बलवती बन जाए ताकि अपनी जीवन यात्रा के उद्देश्य को आत्मसात कर सकूं। तो चलूं, इस कारवां में अपने आप को नगण्य मानता हुआ चलता रहूँ। बस एक ही चाह –

मिट जाये मेरा नाम भले,
रह जाए यजमानों का।

✲

गतांक से आगे

महान क्रांतिकारी-राव गोपालसिंह खरवा

– ले. सुरजनसिंह झाझड़, संकलन व सम्पादन-डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा

तत्कालीन अन्य घटनाएँ- वि.सं. 1957 (ई सन् 1800) में चीन का युद्ध आरम्भ हो चुका था। अंग्रेजों ने भी अपनी सेनाएँ उक्त युद्ध में भाग लेने भेजी थी। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह अपनी शुतर सवार सेना गंगा रसाले के साथ अंग्रेजों की तरफ से चीन युद्ध में भाग लेने गए थे। जोधपुर राज्य की सेना के कुछ घुड़सवार दस्ते भी युद्ध में भाग लेने गए थे। खरवा के राव गोपालसिंह ने भी उक्त युद्ध में जाने के लिये प्रार्थना पत्र भेजकर वायसराय से स्वीकृति चाही, परन्तु सधन्यवाद उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई। मसूदा के शासक राव बहादुरसिंह की मृत्यु के समय उनके कोई जीवित पुत्र नहीं था। राव गोपालसिंह ने मसूदा की समस्या का अन्त किया।

दिल्ली दरबार से महाराणा को रोकना- सम्राट एडवर्ड के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में भारत के वायसराय लार्ड कर्जन ने सन् 1903 के जनवरी माह में दिल्ली में एक भव्य दरबार का आयोजन किया था जिसमें उपस्थित होने के लिये भारतवर्ष के समस्त महाराजाओं, राजाओं नवाबों को आमंत्रित किया था। मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह ने उक्त दिल्ली दरबार में उपस्थित होने के आमंत्रण को यह कहकर अस्वीकार कर दिया था कि उनके प्रतापी पूर्वज ने दिल्ली दरबार में कभी उपस्थित न होने की प्रतिज्ञा की थी। यह हुआ जब महाराणा की स्पेशल ट्रेन दिल्ली की तरफ धड़धड़ाती जा रही थी- नसीराबाद रेल्वे स्टेशन से पूर्व बारहठ केशरीसिंह द्वारा रचित **''चेतावणी के चूँटके''** राव गोपालसिंह द्वारा महाराणा को प्रस्तुत किए गए।

सोरठे क्या थे, महाराणा के सुप्त गौरव पर व्यंग्यात्मक चाबुक प्रहार था। प्रतापी राणा प्रताप का वंशज फतेहसिंह सोरठे सुनकर रोमांचित हो उठा। कर्तव्य बोध ने उसे झकझोर दिया। कवि ने उसे कुल मर्यादा का बोध कराते हुए कहा था-

पग पग भम्या पहाड़ धरा छाडि राख्यो-धरम।
महाराणा मेवाड़ हिरदे बसिया हिन्दरै।।
धण घळिया घमसाण रांण सदा रहिया निडर।
दम्भी गढ़ दिल्लीह, सीस नमन्तां सीसवद्।।

दिल्ली जाते महाराणा फतेहसिंह को सरेरी रेल्वे स्टेशन पर चेतावनी के चूँटके पहुँचाने एवं तत्सम्बन्धी अन्य कार्यों में सहातया देने में खरवा के राव गोपालसिंह की भूमिका प्रमुख रही थी। महाराणा के दिल्ली से पीछे लौटते समय नसीराबाद रेल्व स्टेशन पर उपस्थित होकर राव गोपालसिंह ने राष्ट्रीय गौरव के रक्षक महाराणा को धन्यवाद निवेदन करते हुए दो सोरठे प्रस्तुत किए।

होता हिन्दू हतास, नमतो जे राणा नृपत।
सबल फता साबास, आरज लज राखी अजाँ।।
करजन कुटिल किरात, ससक नृपत ग्रहिया सकल।
हुओ न थूँ इक हाथ, सिह रूप फतमल सबल।।

संस्कृत व अंग्रेजी- राव गोपालसिंह गर्वीले-स्वभाव के स्वाभिमानी वीर योद्धा थे। आर्य समाज के सुधारवादी एवं देशभक्ति पूर्ण विचारों का उन पर गहरा प्रभाव था। मेयो कॉलेज की शिक्षा नीति और पद्धति के भी वे आलोचक थे। वहाँ पर शिक्षा पाने वाले राजकुमारों और सामन्त पुत्रों को उनके कुलाचार एवं सभ्यता संस्कृति से अनभिज्ञ रखते हुए पाश्चात्य संस्कृति और आचार विचारों के रंग में रंगने का दुष्प्रयत्न किया जा रहा था। राव गोपालसिंह के विचार-Your letter regarding the education of Kanwar Ganpat Singh is at hand. To it my reply is that we want to teach him, Sanskrit first, so that he may understand the principle of Hindu Religion and Culture we have already appointed good Scholar to teach him at home, we give second place to english....

शिक्षा प्रसार कार्य- राजस्थान के उक्त कालखण्ड में यहाँ के लोगों का शिक्षा की तरफ कम ही ध्यान गया

था। शिक्षा के क्षेत्र में राजपूतों का पिछड़ापन तब सर्वविदित था। शिक्षा विहीन मस्तिष्क का समायोचित चहुंमुखी विकास होना दु:साध्य था। राजपूत अशिक्षित होने की वजह से अपने शानदार अतीत को भूला चुके थे। राव गोपालसिंह ने राजपूत, चारणों एवं ब्राह्मणों और पिछड़ों के पढ़ने के इच्छुक अनेक बालकों को पठनार्थ छात्र वृत्तियाँ प्रदान करके अजमेर के आर्य समाज छात्रावास में भर्ती करवाया था। सुमेल, बाबरा, बलूंदा, आलणियावास, गोविन्दगढ़ आदि ग्रामों के ठाकुरों ने गोपालसिंह द्वारा शिक्षा प्रसार एवं नीति की प्रशंसा की।

राजनीति से क्रान्ति की ओर– उक्त समय में रूस-जापान युद्ध चल रहा था। युद्ध में जापान को मिली सफलता ने भारतीयों में भी स्वतंत्रता की भावना का पुनरोदय कर दिया। सन् 1898 ई. से 1905 ई. तक भारत के वायसराय एवं गवर्नर जनरल पद पर आसीन लार्ड कर्जन ने 1905 में बंगभंग का देश विघटनकारी कार्य किया। राजस्थान के अज्ञानावृत अन्धकारपूर्ण उस काल खण्ड में नवोदित प्रकाश पुंज की भाँति राव गोपालसिंह खरवा और बारहठ केसरीसिंह सौदा का उदय हुआ। उन दोनों नर रत्नों ने राजस्थान के सुप्त गौरव और स्वाभिमान की पुन: जागृति हेतु क्रान्ति के कठिन मार्ग को अपनाया- जहाँ सम्पत्ति विनाश और प्राणनाश के दोनों खतरे मौजूद थे। राव गोपालसिंह उन लोगों में से थे, जो ब्रिटिश सत्ता को क्रान्तिकारी कार्यों से उखाड़ फैंकने के कार्य में प्रवृत्त हो चुके थे। उनके साथी रासबिहारी बोस और शचीन्द्रनाथ सान्याल के संगठन में उनका नाम था। सन् 1915 के स्वातंत्र्य विद्रोह के समय अजमेर मेरवाड़ा में जन विद्रोह का संचालन करने एवं प्रान्त को अंग्रेजों के अधिकार से मुक्ति दिलाने के कार्य के अग्रणी नेता राव गोपालसिंह थे। ब्यावर के सेठ दामोदरदास राठी राव गोपालसिंह के अभिन्न मित्र एवं विश्वस्त साथी थे। लोक मान्य तिलक के उग्र राष्ट्रीयतावादी विचारों के अनुयायी गोपालसिंह, शस्त्र-शक्ति में विश्वास रखने वाले क्षात्रधर्म के उपासक व्यक्ति थे। क्षात्रधर्म के माध्यम से ही देश को गुलामी से मुक्त किया जा सकता है ऐसी उनकी मान्यता थी।

विदेशी वस्त्रों की होली– खरवा उस काल राष्ट्रीयता का गढ़ बना हुआ था। देश प्रेम की भावना वहाँ के जनमानस में समुद्र की लहरों की भाँति हिलौरें ले रही थी। गोपालसिंह भारत धर्म महामण्डल के सदस्य बने, उनके कुछ साथियों के नाम इस प्रकार हैं- महाराजा साहव दरभंगा, शाहपुरा मेवाड़ के राजकुमार उम्मेदसिंह, श्री बरदाकान्त लाहेड़ी, भूतपूर्व दीवान फीरदकोट (पंजाब), राव गोपालसिंह खरवा (अजमेर), महाराजा किशनगढ़ की तरफ से ठा. रघुनाथसिंह कोटड़ा (मालवा) के ठा. भगवतसिंह। उस समय लार्ड मिन्टो भारत के वायसराय पद पर आसीन थे। कम्युनिस्ट पार्टी के नेता स्वामी कुमारानन्द ने कलकत्ता में राव गोपालसिंह का भाषण सुना। सवा माह कलकत्ता रहने के पश्चात् 20 अप्रेल, 1908 को राव गोपालसिंह खरवा लौट आए। उनके खरवा पहुँचने के आठ दिन पश्चात् ही अरविन्द घोष सरकार विरोधी आपत्तिजनक कार्यवाइयों के कारण गिरफ्तार कर लिए गए। सन् 1908 से 1915 ई. तक का सात वर्ष का समय राव गोपालसिंह द्वारा देश की स्वतंत्रता के निमित्त किए गए प्रगट और अप्रगट क्रांतिकारी कार्यों का इतिहास रहा है।

राजस्थान के प्रमुख सहयोगी क्रान्तिकारी– बारहठा ठा. केशरीसिंह, शाहपुरा, उनका घराना राजस्थान में मान्य एवं उदयपुर एवं जोधपुर के नरेशों द्वारा सम्मानित था। बून्दी के महाकवि मिश्रण सूर्यमल्ल की अमर कृति वंश भास्कर के टीकाकार के रूप में ख्याति थी। बारहठ केशरीसिंह के छोटे भ्राता जोरावरसिंह, केशरीसिंह के युवापुत्र प्रतापसिंह, पंडित विष्णुदत्त त्रिपाठी, सोमदत्त लहरी, जोधा नारायणसिंह, अर्जुनलाल सेठी, भूपसिंह या विजयसिंह पथिक इत्यादि।

राव गोपालसिंह नजर बन्द– जून 1915 ई. में ए.जी.जी. राजपुताना के आदेश से राव गोपालसिंह को टॉडगढ़ के सुदूर पहाड़ी स्थान पर नजर-कैद किया गया- जोधपुर के राठौड़ अपनी घुड़सवार सेना की श्रेष्ठता के

(शेष पृष्ठ 28 पर)

क्राँति

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

आमतौर पर किसी व्यवस्था में परिवर्तन आ जाए तो उसे क्राँति कहते हैं। जिस परिवर्तन के बारे में हमने सोचा भी न हो, जिसकी हमने कल्पना भी न की हो और वह हो जाए, वह घटना घटित हो जाए, वह क्राँति है। आज से करीब दो ढाई सदियों पूर्व यूरोप में औद्योगिक परिवर्तन आ गया, जो काम हाथों से होता था वह काम अब यंत्रों से, मशीनों से होने लगा, वह औद्योगिक क्रांति कहलाया। मनुष्य अपने हाथों से एवं कुछ प्राणियों की सहायता से जो काम करता था उसमें समय भी लगता था, वह कार्य विलम्ब से होता था, तथा काम का परिणाम (मात्रा) भी कम होता था क्योंकि काम करने वाले मनुष्य और प्राणी थक भी जाते थे। इस वजह से उनके काम करने की गति और तीव्रता भी मंद होती थी। अब जब वही काम यंत्रों से होने लगा तो काम की गति बढी, वक्त भी कम लगने लगा, उत्पादित वस्तुओं का ढेर होने लगा, फलस्वरूप खर्च भी कर्म आने लगा, परिणामस्वरूप इन वस्तुओं की कीमतें भी घटने लगी। परिणामस्वरूप मनुष्य का श्रम घटा, सुख-समृद्धि में भी बढावा हुआ। लेकिन उस क्रांति के असर का दूसरा भी तो पहलू है।

जिनके पास पूंजी थी उन्होंने यंत्र खरीद लिए और बड़े-बड़े कल कारखाने स्थापित किए। अब जो कारीगर थे, जिनका स्वयं का कोई न कोई धंधा था, वे उन कारखानों के सामने टिक न सके और अपने स्वयं के धंधे छोड़कर मजबूरन उन्हें उन कारखानों में काम करने जाना पड़ा। वे मालिक से मजदूर हो गए। संसार में दो वर्ग अस्तित्व में आए-मालिक और मजदूर। शोषक और शोषित। शोषक वर्ग अति धनी होता गया और शोषित वर्ग गरीब से गरीब होता गया। फलत: वर्ग-विग्रह होने लगा। शोषित वर्ग जब विद्रोह को उतरा तो जो संघर्ष हुआ उसमें निर्दोषों को भी छोड़ा नहीं। पू. तनसिंहजी ने उस स्थिति के बारे में कहा है-

हाँक उठाई वज्र गिराए, बने बनाये सभी मिटाए।
निर्दोषों के खून में रंग के, रंग बिरंगे लाल रंगाए।
मानवता के मिट गये घेरे, ऐसे आए लाल सवेरे।।

गौ भक्त कहलाने वाले भारत में कृषि फार्म में गायों की संतान और बैलों का उपयोग कृषि कार्य में होता था। उनकी अच्छी तरह देखभाल होती थी। अब कृषि में यंत्रों का उपयोग होने लगा है और गायों की संतानों को कत्लखानों में भेज दिया जाने लगा। क्या यही क्रांति है? हाँ क्रांति तो हुई है, परिवर्तन तो आया है, लेकिन तामस प्रकृति प्रधान परिवर्तन हुआ है। तो फिर क्रांति क्या है? क्रांति तो वह है जो संसार में सात्विक समन्वय के साथ परिवर्तन लाती हो।

इतिहास हमें बताता है कि सदियों से कई प्रदेशों और राष्ट्रों में सत्ता परिवर्तन होता आ रहा है, लेकिन उन प्रदेशों की जनता को सत्ता परिवर्तन में कोई रुचि नहीं थी। क्योंकि शासक कोई भी आए जनता को तो शोषित ही रहना पड़ता था। क्योंकि शासकों का तो यही मानस रहता था कि प्रजा और राज्य की संपत्ति पर तो उनका ही एकाधिकार है। कुछ एक शासकों को छोड़कर ज्यादातर शासक प्रजा के सुख और सुविधाओं के विषय को अपना कर्तव्य नहीं मानते थे, उनका तो शासन, शोषण और भोग विलास पर ही अधिकार है। वैदिक काल की शासन प्रणाली, कि राजा या शासक का जीवन ही प्रजा के लिए है, को वे भुला चुके थे। प्रजा के प्रति पिता के ईश्वरीय भाव से च्युत हो चुके थे। उनमें से शासक के संस्कार ही लुप्त हो गए थे उनका मानस कुसंस्कारों का दास हो गया था, और उसी मानस ने उनके दिलों पर कब्जा कर लिया था। यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार प्रजा भी ऐसी ही हो चुकी थी। अपने शासक और राज्य या राष्ट्र के प्रतिअपना दायित्व खो चुकी थी। राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व से मुँह मोड़ लिया था। शासक और प्रजा अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति में ही लगे रहे थे। कौन शासक आता है और कौन शासक जाता है इससे उनका कोई लेना-देना नहीं था। इस

प्रकार बदलती रहती व्यवस्था को क्या क्रांति कहा जाता है भला। पू. तनसिंहजी ने तो कहा है-

दिल नहीं बदले, कुछ नहीं बदला,
सत्ता बदली क्रांति नहीं है।
नाम पुराने अर्थ नए दे,
जीवन बदले क्रांति यही है।

पूज्यश्री के विचार से जीवन को सात्विकता की ओर बदलना ही क्रांति है। जीवन को किस प्रकार बदलना है? जो तरुवर किसी के काम न आए, वह व्यर्थ फला है। किसी के काम आने में ही उसके पनपने में और फलने में, उसके जीवन की, उसके अस्तित्व की सार्थकता है। कर्तव्य पालन में ही उसका महत्त्व है, उसके जीवन की सार्थकता है।

राजा, प्रजा और राज्य या राष्ट्र की सुख, शान्ति, समृद्धि और सुरक्षा का आधार राजा और प्रजा के अपने-अपने कर्तव्य ज्ञान और उसके पालन पर निर्भर करता है। जो राजा या शासक अपने कर्तव्य को, अपनी जिम्मेदारी को अपना स्वधर्म मानता हो और उसका पालन करता हो तो प्रजा भी उस शासक को अपना उद्धारक, अपना संरक्षक, अपना हितैषी मानती है और उसमें ही ईश्वरीय भाव देखकर उसकी हर आज्ञा का पालन करती है और उसकी सुरक्षा में ही अपनी सुरक्षा का अनुभव करती है। प्रजा और राजा या शासक एक दूसरे के सहयोगी हो जाते हैं। एक दूसरे के सुख को ही अपना सुख मानते हैं। एक दूसरे के सहयोग को ही अपना अधिकार मानते हैं। जिस राज्य में ऐसा परस्पर सहयोग होता है, वह राज्य समृद्ध, शक्तिशाली और सुरक्षित होता है, विकास के शिखर की राह पकड़ता है और स्वर्ग-सा सुख महसूस करता है। तभी पूज्यश्री ने कहा है-

सहयोगी जीवन के सपने मूर्त हुए रे स्वर्ग यहीं है।

क्या ऐसी क्रांति सम्भव है? क्या क्रांति भी अहिंसक हो सकती है? सात्विक क्रांति भी लाई जा सकती है? प्रकृति त्रिगुणात्मक है-सत्, रज और तम। लेकिन हम देखते हैं कि इनमें से दो गुणों का ही अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। सत् और तम। दोनों में संतुलन रखने वाला रज जब प्रमादी या कमजोर हो जाता है तो तमोगुण अधिक प्रभावी हो जाता है। संसार में शान्ति, समृद्धि, सुख और जीवन में सर्वतोमुखी उत्कर्ष के लिए जरूरी है रजोगुण का क्रियाशील होकर सतोगुण के साथ सहयोग करना।

रजोगुण का सतोगुण के साथ सहयोगी बनकर आवश्यक है उसका सात्विक वैचारिक क्रांति लाना। पिछली कुछ सदियों से उसमें वैचारिक कुण्ठा आ गई है। उसके मानस ने स्वार्थ प्रधान होकर अहं की शरण ली है। पिछली कुछ सदियों में और वर्तमान में शासन व्यवस्था में कुछ परिवर्तन अवश्य आया है लेकिन वह सतोगुणीय न रहकर तमोगुणीय अधिक है। यदि उसमें वैचारिक परिवर्तन हुआ है तो समता के नाम पर तामस प्रधान अधिक है। जैसा पूज्यश्री ने कहा है-

समता के झांसे में इधर भी भोग है उड़ता पंख लगाए।

परिवर्तन के प्रवर्तक कहे जाने वाले बुद्धि प्रधान लोग अपने आपको जनता के उद्धारक, गरीबों के मसीहा अवश्य बताते हैं लेकिन उनके वैसे संस्कार ही नहीं हैं। सद्चरित्र के लिए सुसंस्कारों का होना आवश्यक है और सुसंस्कारों के निर्माण के लिए ऐसी कोई जादूई लकड़ी नहीं है जो सिर पर फिराई और संस्कार आ गये। सुसंस्कारों के निर्माण के लिए निरंतर, नियमित, निश्चित प्रक्रिया में स्वाध्याय की आवश्यकता रहती है, जरूरी है।

प्राचीनकाल में ऋषि मुनियों के गुरुकुलों में बालकों और किशोरों को ये संस्कार दिये जाते थे, लेकिन अब ये गुरुकुल भी नहीं रहे हैं और न ऐसे ऋषि मुनि भी रहे हैं। लेकिन क्षत्रिय समाज में एक क्रांति आई है 'श्री क्षत्रिय युवक संघ' के रूप में। गुरुकुलों और ऋषि-मुनियों का कार्य अब भी श्री क्षत्रिय युवक संघ ने उठा लिया है। क्षत्रिय जाति के मेधावी व्यक्तियों ने कभी वेद मंत्रों और धर्मशास्त्रों से संसार को जीता था तो कभी त्याग और बलिदानों से संसार को जीता था। राजा हरिश्चन्द्र ने 'सत्य मेव जयते' का सूत्र सिद्ध किया, ऋषि विश्वामित्र ने 'गायत्री' का महामंत्र दिया, राजा रामचन्द्र ने सुराज्य-रामराज्य की

(शेष पृष्ठ 28 पर)

नर से नारायण की कृपा बड़ी

– संकलित

एक बार श्रीकृष्ण और अर्जुन साथ जा रहे थे कि मार्ग में एक अत्यन्त दरिद्री ब्राह्मण दिखाई पड़ा। उसकी दरिद्रता देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा,-''इस बेचारे गरीब ब्राह्मण को कुछ दो।'' अर्जुन ने ब्राह्मण को पास बुलाकर कुछ धन दिया जिसे ब्राह्मण सहर्ष लेकर चला गया। दूसरे दिन ब्राह्मण वैसी ही अवस्था में फिर भटकता दिखाई दिया। अर्जुन को सहज ही जिज्ञासा हुई और उन्होंने पूछा, ''ब्राह्मण देव, क्या कारण है कि अब भी तुम दरिद्रों जैसे भटक रहे हो।'' ब्राह्मण ने बताया कि जो धन उसे मिला था वह चोरी हो गया है। अर्जुन को दया आई और इस बार उन्होंने ब्राह्मण को पाँच सोने की अशर्फी दीं। ब्राह्मण प्रसन्न होकर अशर्फी घर ले गया परन्तु उसका दुर्भाग्य कि इस बार भी उसको मिला धन चोरी हो गया। अर्जुन ने ब्राह्मण पर पुन: दया की और इस बार उसे एक पारस मणि दी। पारस मणि लोहे को सोना बना देती है, यह ब्राह्मण को मालूम था। उसने बहुत कृतज्ञता से अर्जुन की यह भेंट स्वीकार की। पहले असावधानी के कारण चोरी होने का उसे बहुत दु:ख था, अत: इस बार पारस मणि को घर में पानी की एक मटकी के अन्दर छिपा कर रख दिया। ब्राह्मण ने सोचा था कि मटकी बहुत सुरक्षित स्थान है और सम्भावना नहीं कि पारस मणि वहाँ से चोरी हो सके। परन्तु भाग्य के आगे किसका बस चलता है। दूसरे दिन ब्राह्मणी उसी मटके को लेकर जल भरने गयी और मटकी साफ करते समय पारस को पत्थर का टुकड़ा समझकर उसे नदी में फेंक दिया। कुछ दिन बाद जब अर्जुन ने ब्राह्मण को फिर वैसे ही फटेहाल देखा तो उसके दुर्भाग्य की प्रबलता पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहा। अर्जुन ने निश्चय कर लिया कि आगे से इस भाग्यहीन ब्राह्मण को कुछ नहीं दूंगा।

मनुष्य की दया जहाँ समाप्त होती है वहीं से भगवान की दया आरम्भ होती है। जब श्रीकृष्ण को अर्जुन का निश्चय मालूम हुआ तो इस बार स्वयं उन्होंने ब्राह्मण पर दया करके उसे दो पैसों का दान दिया। अर्जुन से इतने बड़े-बड़े दान प्राप्त करने के बाद स्वयं भगवान से इतना छोटा दान प्राप्त करने पर उसे आश्चर्य और दु:ख तो बहुत हुआ परन्तु भगवान को वह इन्कार भी कैसे कर सकता था। पैसे लेकर अनमनेपन से वह घर जा रहा था कि रास्ते में उसने देखा कि एक मछुआ अपने हाथ में एक तड़फती हुई मछली को लिए चला जा रहा है। ब्राह्मण को दया आई। उसने सोचा, मेरे इन दो पैसों से क्या होना जाना है, क्यों न इस मछली को ही जीवन दान दे दूँ? यह सोचकर उसने मछुए को अपने मन की बात बताई। मछुए को दो पैसों से अधिक उस मछली पर कमाने की आशा नहीं थी (उन दिनों के पैसे आजकल के पैसों के समान नहीं थे) और उसने खुशी-खुशी वह मछली ब्राह्मण को दे दी। ब्राह्मण ने भी एक बर्तन में पानी भर कर मछली को उसमें डाल दिया। ब्राह्मण का सौभाग्य कि मछली पानी में उल्टी पड़ी और उसके मुँह से पारस मणि निकल पड़ी। ब्राह्मणी द्वारा नदी में फेंकी हुई यह वही पारस मणि थी जिसे इस मछली ने उस समय निगल लिया था। पारस देखकर ब्राह्मण के हर्ष का क्या ठिकाना था, यकायक वह चिल्ला पड़ा, ''मिल गया, मिल गया।'' ब्राह्मण के शोर मचाते समय पास ही एक व्यक्ति बैठा था। इसी व्यक्ति ने ब्राह्मण की अशर्फी चुराई थी। जब उसने ''मिल गया, मिल गया'' का शोर सुना तो उसे निश्चय हो गया कि ब्राह्मण ने उसे पहचान लिया है। व्यक्ति डरा और ब्राह्मण के बहुत निकट आकर बोला-''अरे, इस प्रकार शोर आप क्यों मचा रहे हैं, आपकी चीज आपको अभी लौटा देता हूँ।'' इस प्रकार ब्राह्मण को अपनी खोई सभी चीजें प्राप्त हो गयीं और वह अत्यन्त हर्षित होता हुआ अपने घर चला गया। उसकी दरिद्रता का अन्त हुआ और वह सुखपूर्वक अपना जीवन बिताने लगा।

मनुष्य के हृदय में यदि दया-भाव हो तो वह दान तो दे सकता है, परन्तु उस दान के लेने वाले व्यक्ति को लाभ होगा भी कि नहीं यह तो ईश्वर पर ही निर्भर है, क्योंकि वही मनुष्य के भाग्य का निर्माता है। जब दरिद्री ब्राह्मण के भाग्य का उदय हुआ तो उसे मिला दान सार्थक हुआ।

इस कथा से हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि जब स्वयं भगवान कृपा करके कोई वस्तु देते हैं, चाहे वह कितनी भी हीन क्यों न हो, निष्फल नहीं जाती जैसे श्रीकृष्ण की दी हुई छोटी-सी वस्तु व्यर्थ नहीं गयी। अत: क्या ही अच्छा हो यदि हम अपनी चाही वस्तुओं के लिये भगवान से ही प्रार्थना करें। यों भी नर से आशा करने पर हमारा नारायण में विश्वास कम हो जाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी की ये पंक्तियाँ हम याद रखें-

''मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा विस्वासा।''

मेरा दास कहलाकर नर से आशा करे तो कहो ऐसे व्यक्ति का क्या विश्वास है।

✻

पृष्ठ 24 का शेष महान क्रांतिकारी-....

लिए भारत में इतिहास प्रसिद्ध रहे हैं। मुगल और मराठा काल में जोधपुर के अश्वारूढ़ रिसालों के तूफानी आक्रमणों की प्रशंसा करते हुए अंग्रेज लेखक एच, कॉम्पटन ने लिखा-''Never yet in the history of battle, had footmen dared to oppose the might of Marwar mounted forces'' सन् 1914 ई. में लड़े जा रहे प्रथम महायुद्ध में जोधपुर रिसाले की भूमिका उल्लेखनीय मानी गई थी। सरकार प्रताप द्वारा संगठित राठौड़ घुड़सवार सेना का नाम-जोधा स्क्वेड्रन था। उक्त रिसाले की सेवा से निवृत होने पर अनेक सैनिक राव गोपालसिंह के पास खरवा आकर रह गए थे। उनमें महेचा बलवन्तसिंह बालोतरा, ऊदावतगाड़सिंह नागौर, मेड़तिया सवाईसिंह, मेड़तिया बख्तावरसिंह, जोधा चन्द्रसिंह देवगढ़ खरवा, जोधा सावन्तसिंह सीटावट, चांदावत संगारसिंह-राव गोपालसिंह के साथी थे। इस प्रकार राव गोपालसिंह खरवा देश में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ चला रहे थे जैसे कि हार्डिंग बम काण्ड, नीमेज हत्याकाण्ड। राव गोपालसिंह को आरोप पत्र दे दिया गया। एक समसामयिक चारण कवि ने उनके उस चमत्कारिक अद्भुत प्रभाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है।

इण खरवै गौपाल रै, देखण रा भुज दोय।
भारत भिड़ियाँ सहस भुज, हैलै अगणित होय।।

(क्रमश:)

पृष्ठ 25 का शेष --- क्राँति

व्यवस्था दी, भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' का ज्ञान दिया, बुद्ध और महावीर ने अहिंसा का बोध दिया, महाराणा प्रताप ने ने स्वाभिमान और स्वतंत्रता का दीप प्रज्वलित रखा, वीर दुर्गादास ने स्वामिभक्ति और आदर्श चरित्र की मिशाल कायम की, तो तनसिंहजी ने सामुहिक संस्कार की कर्मप्रणाली, यज्ञशाला श्री क्षत्रिय युवक संघ दिया।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की सामुहिक संस्कारमय कर्म प्रणाली ने, क्षत्रिय समाज को ही नहीं, बल्कि सारे संसार में सात्विक वैचारिक क्रांति लाकर नई चेतना जगाने का कार्य प्रारम्भ किया है। यह क्रांति नहीं तो और क्या है? इस क्रांति के मार्ग पर निरंतर, नियमित चलकर, दृढतापूर्वक धैर्य के साथ स्वाध्याय करते रहे तो अवश्य ही सहयोगी जीवन का सपना साकार होगा और संसार में ही स्वर्ग का अनुभव होगा। बात ही बात में तलवार खींचने वाला क्षत्रिय अब संस्कार सींचन करने वाले श्री क्षत्रिय युवक संघ के प्रांगण में निरंतर, नियमित, निश्चित समय पर दृढ विश्वास के साथ जाकर धैर्यपूर्वक शस्त्र-शास्त्रों और कर्तव्य पालन, स्वधर्म का ज्ञान प्राप्त करने, भोग और ऐश्वर्य को त्याग कर, कष्ट सहिष्णु बनकर, स्वार्थ और अहं की आहुति देकर, फल की आकांक्षा को जलाकर क्षत्रिय कुल की परम्परा को निभाने के लिए जो कर्तव्य मार्ग पर चलने को प्रस्तुत हुआ है, यह क्रांति नहीं तो और क्या है? It is true and honest revolution.

जय संघशक्ति!

व्यक्तित्व निर्माण हेतु इन्द्रियों के भोगों से बचें

– भँवरसिंह रेड़ी

इन्द्रिय प्रलोभन ही कुछ ऐसा होता है कि वह पहले तो मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करता है और जब व्यक्ति उसके संपर्क में आ जाता है तो वह धीरे-धीरे व्यक्ति को अपने आगोश में इस प्रकार जकड़ लेता है कि व्यक्ति और सब कुछ भुला सकता है लेकिन उस इन्द्रिय सुख के अभाव में वह एक दिन भी नहीं बल्कि एक समय भी नहीं रह सकता और चाहे वह व्यक्ति फिर कितना ही विवेकशील हो उसका इतना आदी हो जाता है कि एक दिन उसको अपने प्राण भी असमय ही खो देने को विवश होना पड़ता है।

इन्द्रिय भोगों में लिप्त व्यक्ति जिस सुख को भोगते समय आनन्द का बोध महसूस करता है वह उसकी जीवन शक्ति का ह्रास करके विभिन्न असाध्य रोगों से ग्रसित बनाकर उसकी कीमत अदा करता है।

ऐसी स्थिति में वह क्षणिक सुख की नश्वरता को अस्थाई रूप से समझता भी है और अल्प समय के लिए उससे मुक्त होने का प्रयास भी करता है लेकिन कुछ समय बाद पुन: उसमें लिप्त हो जाता है।

इससे बाहर निकलना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है और अंत में इसके अग्निकुण्ड में कीट-पतंगों की तरह जलकर अपने वजूद को स्वाहा कर देता है। मनुष्य का मन हर समय सुख की खोज में लगा रहता है और अधिकतर लोग इन्द्रिय प्रलोभनों अर्थात् भोग विलास में ही अपना सुख ढूंढने के प्रयास में इसकी लोलुपता में फँसकर अपना अमूल्य जीवन बर्बाद कर देते हैं और भोग भोगने की सीमा लाँघने के बाद इससे कभी मुक्त नहीं हो पाते हैं।

गृहस्थ के लिये इन्द्रिय उपभोगों को पूर्णत: गलत नहीं बताया गया है बल्कि अपनी मर्यादा व सीमा में जीवन के सुख भोगने का अलग महत्त्व है। इन्द्रियों की संयमित तृप्ति का अपना एक अलग महत्त्व है और संयमित व मर्यादित उपभोग मनोवैज्ञानिक व चिकित्सकीय आधार है जिसे नकारा नहीं जा सकता। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका सम्यक उपभोग अलग महत्त्व रखता है लेकिन इनके उपभोगों में तन्मय होकर अतिशय उपभोग निन्दनीय व घृणित है। असंयम किसी भी दृष्टि से हितकर नहीं हो सकता। जीवन के हर क्षेत्र में संयम व नियम आधारित जीवन ही व्यक्तित्व निर्माण में साधक होता है।

इस प्रक्रिया में जब संयमित उपभोग के बाद प्राण संचित होता है तो व्यक्ति प्राणवान, ऊर्जावान, ओजवान व कौशल वाला होता है। यही प्राण विचारों को तेजस्वी व व्यक्तित्व को वर्चस्वी बनाता है। इन सबका आधार इन्द्रिय संयम ही है। इसलिये हर युग में मानव प्रकृति के विशेषज्ञों ने एक ही बात कही है कि इन्द्रिय लोलुपता से सदैव सावधान रहने वाला ही अपने व्यक्तित्व निर्माण में सफल हो सकता है।

हलवा, खीर आदि भोजन कितना विशुद्ध होता है? यह मन्दिरों में भोग लगाने व यज्ञ जैसे पुनीत अनुष्ठानों में उपयोग में लिया जाता है लेकिन इसका भी खाते समय संयम नहीं रखेंगे तो दुष्परिणाम ही प्राप्त होगा। इसी प्रकार जीवन के अन्य भोगों के संदर्भ में भी यह सत्य है। जो भी खाते-पीते हैं वह जीवन को स्वस्थ रखने व जीने के लिये खाते हैं न कि भोग भोगने के लिये जीते हैं। अत: त्याज्य पदार्थों का सेवन कभी भूल कर भी न करें और गृहणीय पदार्थों का उपभोग करें तो संयमित व मर्यादित रहकर करें वरना उनका दुष्परिणाम भुगतना व जीवन असमय ही समाप्त करके चलना पड़ेगा।

इसी संदर्भ में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाया है कि इन्द्रिय विषयों का चिन्तन करते-करते व्यक्ति उनमें आसक्त हो जाता है और आसक्ति से काम और काम से कामना, क्रोध और फिर मोह से स्मृति

(शेष पृष्ठ 31 पर)

हमारा स्वरूप

– रश्मि रामदेरिया

'मैं, तू, यह और वह- ये चारों तो असत्, जड़ और दुख रूप हैं, पर चिन्मय सत्ता सत्, चित्त और आनन्द रूप है।'

स्वरूप में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा और समाधि, ये पांचों ही अवस्थाएँ नहीं हैं। ये पांचों अवस्थाएँ अनित्य और स्वरूप नित्य है। अवस्थाएँ अलग-अलग (पांच) हैं, पर उनको जानने वाले हम स्वयं एक ही हैं। ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग इन तीनों के सिवाय दूसरा कोई कल्याण का मार्ग नहीं है। किसी आकृति विशेष का नाम मनुष्य नहीं है, प्रत्युत मनुष्य वह है जिसमें सत् और असत् तथा कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक हो। शरीर तो केवल कर्म सामग्री है, वास्तव में एक साधक है, जिसका उपयोग केवल दूसरों की सेवा करने में ही है। दुखी व्यक्ति ही दूसरों को दुख देता है। प्रसन्नचित व्यक्ति हर पल सब को खुशी देता है।

ये अनमोल घड़ी बरबाद न कर, बरबाद न कर,
जब मिल ही गये तो फरियाद न कर, फरियाद न कर,
इन प्यालों को आखिर पीना ही है,
फिर जहर के हों या अमृत के हों।

मनुष्य मात्र को परमात्मा प्राप्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। 'मैं संसारी नहीं हूँ, प्रत्युत साधक हूँ'। यह हर पल याद रखें। परमात्मा प्राप्ति शरीर को नहीं होती प्रत्युत साधक को होती है। साधक अशरीरी होता है। मिली हुई और बिछुड़ने वाली वस्तु अपनी नहीं होती, यह सिद्धान्त है। भोग और संग्रह करना ही प्राप्त वस्तुओं का दुरुपयोग है और उनको दूसरों की सेवा में लगाना ही उनका सदुपयोग है। हम कम से कम आयु में तथा कम से कम सामर्थ्य में भी अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं।

समझ बिना सब करणी रे तेरी कांची,
या तो सेन लखो, गुरु से सांची।
निरगुण वस्तु तत्व नहीं,
चीना त्रिगुण बिलावे छाछी।
ब्रह्म ज्ञान बिन पार न होवे,
अचल राम कह सांची।

महात्मा श्री भूरी बाई-'अलख'-

'माया है भगवान री मन मोहक मुस्कान।
हास्य वणां रो वणां री करुणा कहै पुराण।'
'नी खुद रा अस्तित्व सूं, कोई ने इन्कार,
ओढ ढांक भी सो रहै म्हुं म्हुं तो तैयार।'

पराधीनता को मिटाने के लिए निष्काम होना बहुत आवश्यक है। निष्काम होने पर साधक संसार पर विजय प्राप्त कर लेता है। प्रभु के प्रेम का भी पात्र बन जाता है। कर्तव्य कर्म का पालन हुए बिना प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग नहीं होता। साधक का कर्तव्य यह है कि वह अपने प्रति न्याय करे और दूसरे के प्रति क्षमा करे। प्रभु का अंश होने के नाते मनुष्य मात्र स्वरूप से निर्दोष है, इसलिए किसी भी मनुष्य में हमें बुराई नहीं देखनी चाहिए। किसी को बुरा समझना अथवा किसी का बुरा चाहना बुराई करने से भी बड़ा दोष है।

सच्चे हृदय से प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है,
तो भक्त वत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाये है।

भक्त सच्चे हृदय से प्रार्थना करता है तो भगवान को आना ही पड़ता है। किसी की ताकत नहीं जो प्रभु को रोक दे। जिसके भीतर एक भगवान के सिवाय अन्य कोई इच्छा नहीं है- न जीने की न करने की इच्छा है, न मान की न सत्कार की, न आदर की न रुपयों की, न कुटुम्ब की इच्छा है उन्हें प्रभु जल्दी और जरूर मिलते हैं। पापी हैं या पुण्यात्मा हैं, पढे लिखे हैं या अनपढ हैं, प्रभु कुछ नहीं देखते, वे केवल हृदय का भाव देखते हैं।

समाज में ज्यों-ज्यों अधिकार पाने की लालसा बढती जाती है, त्यों-त्यों लोग अपने कर्तव्य से हट जाते हैं, जिससे समाज में संघर्ष पैदा हो जाता है। साधक को

केवल इतना ही मानना आवश्यक है कि प्रभु हैं और वे मेरे हैं। ईश्वर को हम जान सकते ही नहीं और माने बिना रह सकते ही नहीं। हमारी सत्ता प्रभु के होने में प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रभु की प्राप्ति क्रिया और पदार्थ के द्वारा नहीं होती प्रत्युत क्रिया और पदार्थ के त्याग से अपने ही द्वारा होती है।

प्रभु को सबसे ज्यादा प्रिय है-प्रेम। और प्रेम प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है-भगवान में अपनापन। प्रेम की जाग्रति के बिना अहम् का सर्वथा नाश नहीं होता। प्रेम की प्राप्ति के बिना साधकी की पूर्णता नहीं होती है।

मनुष्य और पशु में एकाग्रता का फर्क है। The main differnec between men and the animal is the difference in their power of concentration. All the success in any line of work is the result of this.

हम में एकाग्रता की बहुत शक्ति है, हर कार्य में इसके द्वारा सफलता मिलती है, फिर वो चाहे प्रभु के स्वरूप या हमारे स्वरूप को पहचानना हो। जानने की शक्ति का सदुपयोग है-अपने आपको जानना। करने की शक्ति का सदुपयोग है-सेवा करना। और मानने की शक्ति का सदुपयोग है-भगवान को मानना। हम अकेले ही रहते हैं इसलिए अपने स्वरूप को पहचान कर हमें अकेले (पदार्थ, क्रिया, चिन्तन और अस्थिरता से रहित) रहने का स्वभाव बनाना चाहिये।

पृष्ठ 29 का शेष **व्यक्तित्व निर्माण.......**

विलुप्त हो जाती है। और अन्तत: व्यक्ति का अध:पतन हो जाता है। अत: प्रभु की दी हुई यह अनुपम भेंट रूपी शरीर को सशक्त, ओजस्वी, तेजस्वी, सहिष्णु, भावनाशील, आकर्षक व चरित्रवान तथा स्थिर बनाये रखने के लिये अपनी व्यक्तिश: नैतिक जिम्मेदारी समझकर अपने उत्तरदायित्व का पूर्णरूपेण निर्वहन करना चाहिये। इसी से व्यक्तित्व निर्माण सम्भव है। हम कितने ईमानदार, समझदार, जिम्मेदार, साहसी तथा दृढप्रतिज्ञ हैं इसकी परख इन्द्रिय भोगों के अवसर सामने आते ही होने लग जाती है। यदि ऐसे अवसर सामने आने पर घुटने टेक देते हैं तो हमारे व्यक्तित्व पर अमिट कालिख लग जाएगी और दृढप्रतिज्ञ रहकर पूर्ण आत्मविश्वास से उसका सामना करके उस पर विजय प्राप्त कर लेते हैं तो हमारा उच्च कोटि का व्यक्तित्व प्रमाणित होगा। इसके लिये मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना होगा -

1. हमें आस्तिक बनकर ईश्वर को सर्वव्यापी मानकर यह विश्वास मन में बैठाना होगा कि ईश्वर न्यायकारी है तथा हमारी प्रत्येक गतिविधि पर हर क्षण उसकी पैनी नजर बनी रहती है और हम जैसे कर्म करते रहेंगे उसी के अनुरूप वह फल निर्धारित करता रहता है।
2. हमारे शरीर को ईश्वर प्रदत्त मन्दिर समझकर इसकी पूर्ण पवित्रता बनाये रखने की हमारी स्वयं की जिम्मेदारी है।
3. कुविचारों को अपने स्मृति पटल पर कभी भी अंकित नहीं होने देना चाहिये।
4. सत्संग व स्वाध्याय करते रहने के लिये प्रयासरत रहना चाहिए।
5. समय प्रबंधन (संयम)- समय को अमूल्य समझकर अपने जीवन की समय सारिणी इस प्रकार की बनायें कि 1 मिनट का समय भी निरर्थक न जाने पाये।
6. वाणी संयम-आवश्यकता होने पर ही अपनी वाणी का प्रयोग करें। अनावश्यक तथा अवांछनीय वाणी का प्रयोग न करें।
7. आर्थिक संयम-फिजूलखर्ची, अनावश्यक खरीददारी, दहेज-टीका, मृत्यु-भोज जैसी कुप्रथाओं में अनावश्यक व्यय से दूरी बनाये रखें।
8. जिह्वा के स्वाद में गिरकर स्वास्थ्य को खराब न करें।
9. अपनी सन्तति में उत्तम संस्कार डालकर नैतिक व चरित्रवान नागरिक बनायें। क्षत्रिय युवक संघ से बच्चों को अधिक से अधिक जोड़कर अपनी जाति, समाज और देशसेवा के प्रतिभागी बनें।

✻

धारावाहिक

चित्रकथा–'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'

– बृजराजसिंह खरेड़ा

डाली!..सुगना कहां है ? वो तो अपनी भाभी के स्वागत के लिए कब से उल्लासित थी... क्या हुआ तुम कुछ बोलती क्यों नहीं?
प्रभु! खुशी की घड़ी में दुर्घटना हो गई भाणेज को सांप ने डस लिया
२ भाणेज!... ...भाणेज ऽऽ
भाई!! ऽऽ इसे सांप ने काट लिया
मैं तो लुट गई बीरा ऽऽ ...सासू ने तो बड़ी मुश्किल से साथ भेजा था!... अब मैं उन्हें क्या जवाब दूंगी ऽ
रो मत सुगना! इसे कुछ नहीं हुआ... इसे बरात में नहीं लेगया इसलिए रूठ गया मेरा भाणु!
रामदेव जी ने विष चूस कर निकाल ,दिया...
उठ जा भाणेज ऽ
मामा ऽऽ आप आ गये
मेरे लाल ऽऽ
तीनों बहिनों ने खुशी-खुशी भाई-भौजाई का स्वागत किया...
जितने सुन्दर भैया वैसी ही भाभी!
शिव और पार्वती की जोड़ी लग रही है दोनों की
अंदर पधारो भाभी!
आज रामदेवजी-नेतलदे की सुहागरात थी...
आपने मेरे जीवन में प्रवेश करते ही सारे कष्ट दूर कर दिये..बहुत भाग्यशाली हूं मैं!
...आप तो सब के लिए संकट मोचक हो!..आपके हाथों में तो जादू है!

अपनी बात

जीवन एक अवसर है। और जितने क्षण हम खो देते हैं, उन्हें वापस पाने का कोई भी उपाय नहीं है। जीवन एक अवसर है उसे हम किसी भी भांति, किसी भी रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। जो भी हम उसके साथ करते हैं, जीवन परिवर्तित हो जाता है। कुछ लोग उसे संपत्ति में परिवर्तित कर लेते हैं। जीवन भर, जीवन के सारे अवसर को, सारी शक्ति को संपत्ति में परिवर्तित कर लेते हैं। लेकिन मौत जब सामने खड़ी होती है, संपत्ति व्यर्थ हो जाती है।

कुछ लोग जीवन भर श्रम करके जीवन के अवसर को यश में, कीर्ति में परिणत कर लेते हैं। यश होता है, कीर्ति होती है, अहंकार की तृप्ति होती है, लेकिन मौत जब सामने खड़ी होती है तो अहंकार और यश और कीर्ति सब व्यर्थ हो जाते हैं।

कसौटी क्या है कि हमारा जीवन व्यर्थ नहीं गया?

कसौटी एक ही है कि मौत जब सामने खड़ी हो, तो जो अपने जीवन में कमाया हो वह व्यर्थ न हो जाए। अपने जीवन के अवसर को जिस चीज में परिवर्तित किया हो, सारे जीवन को जिस दांव पर लगाया हो, जब मौत सामने खड़ी हो तो व्यर्थ न हो जाए, उसकी सार्थकता बनी रहे।

मृत्यु के समक्ष जो सार्थक है वही वस्तुत: सार्थक है, शेष सब व्यर्थ है।

यह बात बहुत कम लोगों के ध्यान में है। यह कसौटी, यह मूल्यांकन, यह दृष्टि बहुत कम लोगों के समक्ष है। हमारे समक्ष है या नहीं, यह विचार हमें करना चाहिये। थोड़ा विचार करेंगे कि मैं जीवनभर दौड़कर जो भी इकट्ठा कर लूंगा, चाहे धन इकट्ठा कर लूंगा, चाहे पाण्डित्य इकट्ठा कर लूंगा, उपवास करके शरीर को गलाता रहूंगा, यश कमा लूंगा, कुछ किताबें लिख लूंगा या कुछ गीत लिख लूंगा, लेकिन अन्तत: जब मेरा सारा जीवन अन्तिम कसौटी पर खड़ा होगा, तो मृत्यु के समक्ष इनकी कोई सार्थकता होगी या नहीं होगी?

अगर नहीं होगी, तो आज ही सचेत हो जाना चाहिए। और उस दिशा में संलग्न हो जाना ही उचित है, कि मैं कुछ ऐसी सम्पदा भी खड़ी कर सकूं और कोई ऐसी शक्ति भी निर्मित कर सकूं और प्राणों के भीतर कोई ऐसी ऊर्जा का जन्म दे सकूं कि जब मौत समक्ष हो तो मेरे भीतर कुछ हो, जो मौत से बच जाता हो, मौत जिसे नष्ट न कर पाती हो।

यह हो सकता है। यह हुआ है, यह आज भी हो सकता है और हर एक के जीवन में हो सकता है। लेकिन यह आसमान से टपक कर नहीं होता और न ही यह दान में मिलता है, और न ही इसकी चोरी की जा सकती है और न ही किसी के चरणों में बैठकर इसको मुफ्त में पाया जा सकता है।

यह किसी और से नहीं पाया जा सकता। इसे तो जन्माया जा सकता है, इसका तो सृजन किया जा सकता है। इसे तो खुद अपने श्रम और अपने जीवन और अपने संकल्प और अपनी सारी शक्ति को लगाकर निर्मित किया जा सकता है। लेकिन इस निर्माण की दिशा में कदम नहीं उठेंगे तब तक, जब तक कि जो हम आज कर रहे हैं वह हमें बिल्कुल ठीक-ठीक मालूम पड़ता हो, तब तक कदम नहीं उठेंगे। जैसे हम जी रहे हैं, अगर वह हमें ठीक-ठीक मालूम पड़ता हो, तब तक इस दिशा में कदम नहीं उठ सकते हैं

गीता में वर्णित हमारे स्वधर्म के मार्ग पर न चलकर हम हमारा जीवन व्यर्थ गंवा रहे हैं, जीवन की सार्थकता इसी में है कि उस स्वधर्म को हमारे जीवन में उतारें, यह उपलब्धि मृत्यु के समय भी नष्ट नहीं की जा सकती। यही श्री क्षत्रिय युवक संघ हमें सिखा रहा है और उसी मार्ग पर चलने योग्य बनाने का प्रयास कर रहा है।

छोटी उम्र में
सरकारी नौकरी
की बड़ी तैयारी
MONEY BACK
100%
GUARANTEE
पेश है एक ऐसा स्कूल जहां हर छात्र को
सरकारी नौकरी पाने की गारंटी मिलती है तभी तो
दून स्कूल आपके बच्चों को
रखे सबसे आगे
ADMISSION OPEN for
Class 6th to 10th for 2021 - 2022
आज ही अपने बच्चों का भविष्य सुरक्षित करें
एक अनूठा स्कूल जिसमें आपके बच्चे 6th कक्षा में प्रवेश लेकर 12th पास करने तक सभी प्रकार के कम्पीटेटीव एक्टिविटीज के साथ पढ़ाई करते है
12th के बाद यहां मिलती है हायर एजुकेशन या जॉब ओरिएंटेड कंपटीशन में 100% सिलेक्शन की गारंटी
यदि आपके बच्चें डिफेंस में जाने के इच्छुक है, तो दून स्कूल सहीं पसंद है
क्योंकि यह स्कूल में छोटी उम्र में ही बच्चों को ARMY / AIR FORCE / NAVY / NDA / CAPF में एडमिशन लेने के लिए तैयार करता है
प्रत्येक कक्षा में केवल 30 छात्रों के लिए सीटें ताकि प्रत्येक छात्र पर अच्छे से ध्यान दिया जा सके
छात्रों को एडमिशन टेस्ट पास करने पर ही प्रवेश दिया जाएगा
DOON SCHOOL
DOON SCHOOL (Residential)
NH-15 Darbari Fanta, Bikaner, Rajasthan
Mob.: 8239441401, Email: doon,rajvi@gmail.com
Registration No.: 852/JPR/2014-15
Affiliation No.: RJBKN 25022
वाहन की सुविधा उपलब्ध है
Dr. Bhawan Dhawan
Principal
Mr. Laxman Singh Rajvi
Director
Doon School Bikaner, ARMY / AIR FORCE / NAVY / NDA / CAPF
में सिलेक्शन की गारंटी लेता है, यदि सिलेक्शन नहीं होता है तो, पूरे 6 वर्ष की फीस वापस यह नोटरी द्वारा प्रमाणित करके दिया जाता है

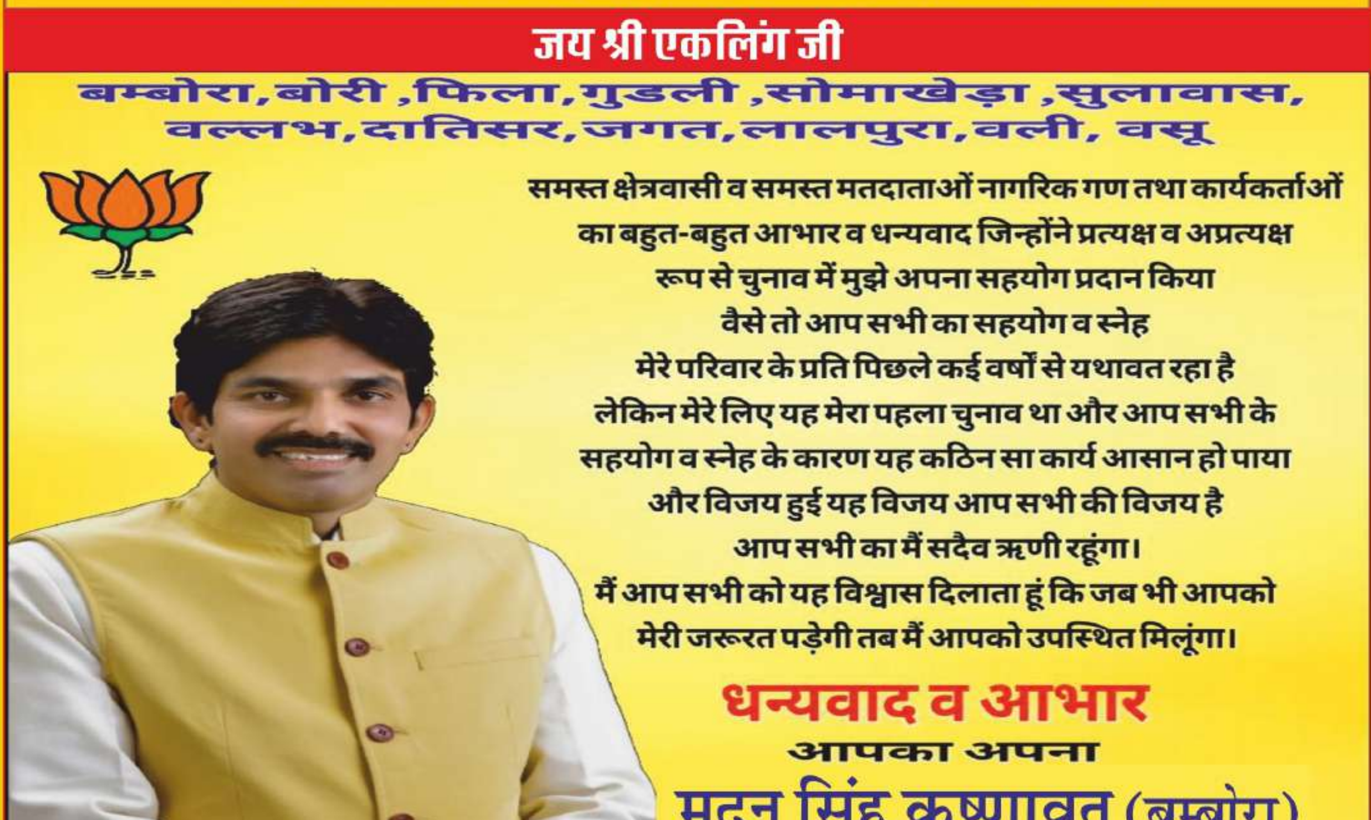

जय श्री एकलिंग जी
बम्बोरा, बोरी, फिला, गुडली, सोमाखेड़ा, सुलावास,
वल्लभ, दातिसर, जगत, लालपुरा, वली, वसू
समस्त क्षेत्रवासी व समस्त मतदाताओं नागरिक गण तथा कार्यकर्ताओं
का बहुत-बहुत आभार व धन्यवाद जिन्होंने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष
रूप से चुनाव में मुझे अपना सहयोग प्रदान किया
वैसे तो आप सभी का सहयोग व स्नेह
मेरे परिवार के प्रति पिछले कई वर्षों से यथावत रहा है
लेकिन मेरे लिए यह मेरा पहला चुनाव था और आप सभी के
सहयोग व स्नेह के कारण यह कठिन सा कार्य आसान हो पाया
और विजय हुई यह विजय आप सभी की विजय है
आप सभी का मैं सदैव ऋणी रहूंगा।
मैं आप सभी को यह विश्वास दिलाता हूं कि जब भी आपको
मेरी जरूरत पड़ेगी तब मैं आपको उपस्थित मिलूंगा।
धन्यवाद व आभार
आपका अपना
मदन सिंह कृष्णावत (बम्बोरा)
जिला परिषद सदस्य उदयपुर

भावपूर्ण श्रद्धांजलि

यदुकुलभूषण भगवान श्री कृष्ण की वंश परंपरा जैसलमेर रियासत के
42वें छत्राला यादव पति

महारावल श्री बृजराजसिंह जी

को उनके असामयिक देवलोक गमन पर हार्दिक श्रद्धांजली
भगवान श्री कृष्णा को उनकी आत्मा को शास्वत स्वरूप में विलय की प्रार्थना करते है।

श्रद्धावनतः- प्रताप सिंह चांधन, गिरधरसिंह जोगीदासका गांव, चंद्रवीर सिंह झिनझिनयाली महिला संरक्षण अधिकारी जैसलमेर, रणवीर सिंह सोढ़ा आर.एस. सोढ़ा टूर एंड ट्रेवल्स, नरपतसिंह फुलिया, आदर्श टूर एण्ड ट्रैवल्स, रतनसिंह बडोड़ा गांव व्याख्याता, मुल्तान सिंह जोगी दास का गांव, श्री मालनबाई इंजीनियरिंग वर्क्स जोगीदास का गांव, एडवोकेट भोजराज सिंह तेजमालता, जालम सिंह भेलानी, पूर्व छात्र संघ अध्यक्ष शैतान सिंह झिनझिनयाली, शारीरिक शिक्षक, हाम सिंह करड़ा, एडवोकेट भवानी सिंह देवडा, कुशाल सिंह भाटी रणधा सौर उर्जा कंपनी जालौर, पूनम सिंह दूजासर भाजपा मण्डल अध्यक्ष सम, रेवंतसिंह चांधन, पवन कुमार सिंह हिडार, चांप सिंह भाटी सरपंच प्रतिनिधि म्याजलार

फरवरी, सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 02

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...
....
....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह